विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष–१६ जुलाई–१९९७ अंक–७

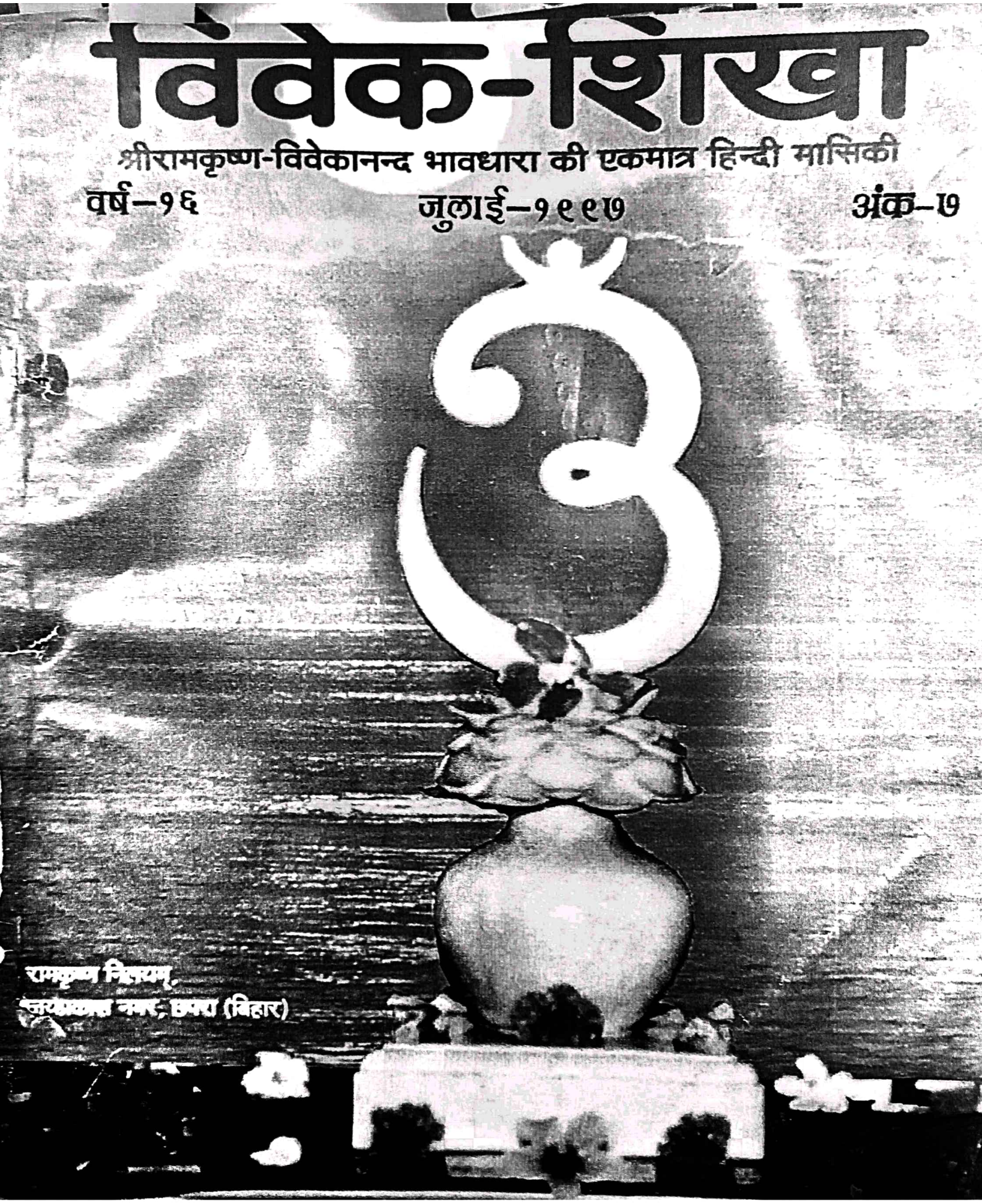

रामकृष्ण मिशन,
जयरामवाटी नगर, छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५७. श्री अशोक कौशिक-मालवीय नगर, (नई दिल्ली)
१५८. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)
१५९. श्री रामकृष्ण साधना कुटीर, खण्डवा (म० प्र०)
१६०. श्रीमती आभा रानाडे, अहमदाबाद (म० प्र०)
१६१. श्री डी० एन० थानबी, जोधपुर (राजस्थान)
१६२. श्री सोहन लाल यादव, नाहर कटिया (आ०)
१६३ डा० (श्रीमती) रेखा अग्रवाल, शाहजहाँपुर(उ प्र.)
१६४. डॉ० (श्रीमती) सुनीला मल्लिक—नई दिल्ली
१६५. श्रीरामकृष्ण संस्कृतिपीठ, कामठी (नागपुर)
१६६. कुमारी जसवीर कौर आहूजा, पटियाला, पंजाब
१६७. श्रीमती मंजुला बोर्दिया, उदयपुर (राजस्थान)
१६८, श्रीमती सुदेश, अम्बाला शहर (हरयाणा)
१६९. डॉ० अजय खन्ना (बरेली उ० प्र०)
१७०. श्री एस० टी पुराणिक—नागपुर
१७१. श्री धन्नालाल अमृतलाल सोलंकी, कलवानी
१७२. डॉ० कमलाकांत, बड़ोदा (गुजरात)
१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजोभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण देव ने कहा है		१
२. गुरु वन्दना	(डॉ० केदारनाथ लाभ)	२
३. साधन का प्रयोजन	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज	३
४ अध्यात्म पथ प्रदर्शक गुरु	स्वामी यतीश्वरानन्द	७
५. नये समाज की रचना	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	१७
६. जो अणु में, वही ब्रह्माण्ड में	स्वामी योगात्मानन्द	२१
७. सारगाछी	श्री नन्दलाल टांटिया	२५
८. सत् प्रसंग	स्वामी विशुद्धानन्द	२७
९. स्वामी विवेकानन्द की स्मृतियाँ	स्वामी सदाशिवानन्द	२९

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१६ जुलाई—१९९७ अंक—७

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक :
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२२६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

चाहे जो व्यक्ति गुरु नहीं हो सकता। जब एक बड़ा भारी शहतीर पानी पर तैरता है तो उस पर पशु भी बैठकर आगे निकल जाते हैं। किन्तु एक सड़ियल लकड़ी के टुकड़े पर यदि कौआ भी बैठ जाय तो वह उसको लेकर डूब जाती है। इसीलिए प्रत्येक युग में मानवजाति को शिक्षा देने के लिए भगवान् गुरुरूप में अवतीर्ण होते हैं। एकमात्र सच्चिदानन्द ही गुरु हैं।

(२)

यदि तुम्हारे अन्तःकरण में भगवान के प्रति ठीक-ठीक अनुराग उत्पन्न हो, उन्हें जानने की स्पृहा उत्पन्न हो तो सद्गुरु से मिला देंगे। तुम्हें सद्गुरु के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

(३)

यदि कोई ठीक-ठीक आन्तरिकता तथा प्राणों की व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकार सके तो उसके लिए गुरु की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु साधारणतः हृदय की इतनी तीव्र व्याकुलता नहीं दिखाई देती, इसीलिए गुरु की आवश्यकता है।

(४)

निरन्तर भगवान् का नाम लेते रहो। भगवन्नाम कलियुग में बड़ा प्रभावशाली है। इस युग में योगाभ्यास करना तो सम्भव नहीं है, क्योंकि मनुष्य के प्राण अन्न पर निर्भर हैं। ताली बजाते हुए भगवान् का नाम-कीर्तन करते रहो। तुम्हारे पाप पक्षियों की भाँति उड़ जायेंगे।

गुरु-वन्दना

—डा० केदारनाथ लाभ

जय रामकृष्ण गुरु महाराज ! जय रामकृष्ण गुरु महाराज !!

भव-सागर-तारणहार तुम्हीं
मेरा जीवन-आधार तुम्हीं
मुझको क्या भय ? कैसी शंका ?
जब तुम्हीं रहे हिय में विराज

जय रामकृष्ण गुरु महाराज ! जय रामकृष्ण गुरु महाराज !!

जो व्याप्त चराचर में हैं नित
दिखलाते उनकी छवि सस्मित;
मैं रह जाता विस्मित विगलित
आनन्द भरा है हृदय - राज

जय रामकृष्ण गुरु महाराज ! जय रामकृष्ण गुरु महाराज !!

निज पाद-पद्म से करो युक्त
चिर जन्म-मरण-भय से विमुक्त;
अज्ञान-तिमिर के करो पार
दो ज्ञान-ज्योति से नयन साज

जय रामकृष्ण गुरु महाराज ! जय रामकृष्ण गुरु महाराज !!

तुम हो मम मातु-पिता-सहचर
विद्या वैभव सुख शान्ति अमर;
विश्राम-धाम हे सर्वेश्वर
रखना प्रभु मेरी सदा लाज

जय रामकृष्ण गुरु महाराज ! जय रामकृष्ण गुरु महाराज !!

साधन का प्रयोजन

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

[प्रस्तुत भाषण पूज्यपाद महाराजजी ने १२ नवम्बर, १९७८ को कटिहार रामकृष्ण मिशन आश्रम में दिया था जो बंगला मासिक उद्बोधन के अग्रहायण १४०३ अंक में प्रकाशित होकर हिन्दी में रूपान्तरित हुआ है। अनुवादक हैं—रामकृष्ण मिशन, नरोत्तम नगर, अरुणाचल प्रदेश में कार्यरत स्वामी चिरन्तनानन्द।—सं]

श्रीरामकृष्ण से वार्तालाप के प्रसंग में किसी ने कहा, "मैं ज्ञान नहीं चाहता, शुद्धा भक्ति चाहता हूँ।" श्रीरामकृष्ण ने उनसे कहा, "जिनकी भक्ति करोगे उनको न जानने से किस प्रकार भक्ति करोगे ?" अर्थात् भक्ति करने के लिए जो भक्ति के पात्र हैं उनके सम्बन्ध में एक धारणा बनाना आवश्यक है। अतः जिनकी भक्ति करेंगे उन भक्ति के पात्र एवं उनके सम्बन्ध में ज्ञान—ये दोनों एक दूसरे के परिपूरक हैं। श्रीरामकृष्ण की भक्ति करने से, उनकी भक्ति क्यों करेंगे यह जानना होगा, नहीं तो भक्ति के पात्र के संबंध में अनेक भ्रान्तियों की सृष्टि होगी। इसीलिए कह रहा हूँ, दोनों के बीच एक अंगांगी सम्बन्ध मौजूद है। इसे हम 'ज्ञान' एवं 'भक्ति' के सम्बन्ध में कह सकते हैं। साधारणतः कहा जाता है कि ज्ञान, भक्ति एवं कर्म परस्पर विरोधी हैं अथवा एक का दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यह ठीक नहीं है, इनके बीच अंगांगी सम्बन्ध मौजूद है। अर्थात् प्रकृत भक्त होने के लिए उसे ज्ञानी होना होगा एवं कर्मी भी होना होगा। और फिर ज्ञानी होने के लिए भक्त भी होना होगा, कर्मी भी होना होगा और यथार्थ कर्मी अर्थात् कर्मयोगी होने के लिए उसे भक्त एवं ज्ञानी होना होगा। हम लोग जो 'भक्तियोगी', 'कर्मयोगी' अथवा 'ज्ञानयोगी'—इस प्रकार विभेद करते हैं वह मात्र यह लक्ष्य करके कि किस पर अधिक जोर दे रहे हैं।

प्रश्न उठेगा, श्रीरामकृष्ण को जानेंगे कैसे ? और उन्हें जानने के बाद और क्या अवशेष रहता है ? सभी तो हो गया। ऐसी बात नहीं, जानने के भी स्तरभेद हैं। ऊपर-ऊपर जानना, गंभीरतापूर्वक जानना और एकदम से तद्रूप होकर जानना। श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में एक-दो किताबें पढ़कर उन्हें ऊपर-ऊपर से जाना जाता है। श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में पढ़कर, चिन्तन-मनन करके उनके सम्बन्ध में एक निश्चित मत में पहुँचा—यह है गंभीरतापूर्वक जानना। और इससे भी अधिक जानना हुआ तद्रूप होकर जानना अर्थात् जब मैं उनके स्वरूप सा हो जाऊँगा। अन्य भाव से जानना है बाहर का रूप जानना-मामूली तौर पर जानना। उनके स्वरूप सा हो जाने से उन्हें ठीक-ठीक जानना होता है। यह तन्मयता ही अन्तिम बात है।

अतएव सर्वप्रथम किताबें पढ़कर वा सुनकर श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में हम ऊपर-ऊपर से ज्ञान

अर्जन करेंगे, फिर उनके संबंध में चिन्तन-मनन करेंगे, गहन सोच-विचारकर मन के भीतर एक परिष्कृत सिद्धांत पर पहुँचेंगे। इस द्वितीय स्तर को जानने के लिए साधना की आवश्यकता है। इस साधना का अर्थ है उनके संबंध में गंभीरतापूर्वक चिंतन करना। और तृतीय स्तर का जो जानना है वह अत्यन्त दुर्लभ हैं। स्वयं के पृथक अस्तित्व को निश्चिह्न करके जब अपने आपको उनमें डुबा दे सकेंगे अर्थात् तन्मय हो जाएंगे तभी जानने की अन्तिम अवस्था हुई, और भक्ति को भी वही अंतिम बात है। इसके बाद करने के लिए और कुछ नहीं रह जाता।

फलतः जो उनकी भक्ति करेंगे उन्हें प्रथम उनके संबंध में पढ़कर अथवा सुनकर ऊपर-ऊपर का ज्ञान प्राप्त करना होगा जिससे मन के भीतर में उनकी छाप पड़े। मात्र कौतूहल निवारण के लिए नहीं अर्थात् जिस प्रकार कहानी उपन्यास या इतिहास पढ़ते हैं इस तरह नहीं—उससे भी अधिक गंभीरतापूर्वक, एकाग्रतापूर्वक जानना हुआ प्रथम स्तर। इस तरह साधना का आरम्भ होता है। यह मानो मूलधन-पूँजी है। पूँजी को लेकर शुरू करना होगा, वह अत्यन्त कम होने से भी, मानो एक छोटी-सी पान की दुकान करने के लिए मूलधन के समान होने से भी। इसे लेकर साधना करते-करते क्रमशः जानने के द्वितीय स्तर पर पहुँचा जाता है, जिस स्तर पर पहुँचने पर उनके संबंध में मन का संशय प्रायः समाप्त हो जाता है, किन्तु तब भी पूरा जानना नहीं होगा। जानना सम्पूर्ण होगा तन्मय या तत्स्वरूप हो जाने से। याद रखना होगा कि हम लोगों का उद्देश्य इस प्रकार तन्मय होना है कि उसमें स्वयं को डुबो देना होगा। साधन की पराकाष्ठा यही है—जहां 'मैं' नहीं रहेगा, मात्र 'वे' रहेंगे। जब तक 'मैं' है तब तक 'वे' बहुत पास रहने से भी दूर हैं। जिस प्रकार हम अपने शरीर के साथ खूब घनिष्ठ हैं फिर भी मानो उससे कुछ दूर हैं। कारण, मेरा शरीर और मैं—यह दो पृथक सत्ता मौजूद है। जब उससे भी गहरा संबंध होगा, जब 'मैं' एकदम निश्चिह्न होकर मात्र 'वे' रहेंगे तब वह हुई ज्ञान एवं भक्ति की अंतिम बात। साधक का लक्ष्य यही है। पहले पढ़कर अथवा सुनकर ऊपर-ऊपर या परोक्ष ज्ञान अर्थात् थोड़ी पूँजी लेकर साधना आरम्भ करनी होती है। जैसे, मैं किस गाँव से होकर कलकत्ता जाऊँगा! कलकत्ता के बारे में मैं जानना चाहता हूँ। तब कुछ लोगों से कुछ बातें मालूम करनी होती है। फिर कलकत्ता के संबंध में मन में एक धारणा बनती है कि कलकत्ता शहर कैसा होगा एवं कहाँ होगा, किस प्रकार वहाँ जाना होता है। यह सब हुआ कुछ बातों का संग्रह। परन्तु इतना होने से ही कलकत्ता जाना नहीं हो जाता। चलना पड़ता है, ट्रेन अथवा बस से यात्रा करनी होती है। कलकत्ता के आसपास पहुँचने पर हो सकता है शहर का कोलाहल चिमनी का धुँआ इत्यादि देखकर हम सोचेंगे कि कलकत्ता के आसपास आ पहुँचे हैं अथवा रात में पहुँचने पर शहर में प्रकाश को जगमगाहट देखेंगे तब लगेगा बहुत नजदीक आ गये हैं। अभी कलकत्ता का जो परिचय हम पा रहे हैं और यात्रा शुरू करने के पूर्व जो परिचय मिला है, ये दोनों एक नहीं हैं। इसके बाद भी जब कलकत्ता में निवास करके कलकत्ता के साथ एकात्म हो जाएँगे तब कलकत्ता को मानो पूर्ण रूप से जानना हुआ।

हमारे साधन का उद्देश्य हैं ठीक कलकत्ता जानने के जैसा करके एकाग्रतापूर्वक श्रीरामकृष्ण को जानना, क्योंकि वहाँ हम अपने 'मैं' पन को निश्चिह्न करके 'वे' मय हो जाएँगे। इस अवस्था में आरंभ कभी नहीं होता, यह अन्तिम अवस्था है। जिस प्रकार श्रीरामकृष्ण कहते, छत पर चढ़ने के लिए एक-एक सीढ़ी पर पैर रखकर चढ़ा जाता है उसी तरह साधन पथ में भी एक-एक कदम

चलकर अन्तिम लक्ष्य पर पहुँचा जाता है। इस एक-एक कदम करके यात्रा शुरू करने के लिए दीक्षा, उनकी बातें सुनना, उनका चिन्तन करना आवश्यक है। साधना प्रारम्भ करके एक-एक कदम चलकर प्रत्येक पदक्षेप में हम धीरे-धीरे आगे बढ़ते जाते हैं। किन्तु रास्ता इतना लम्बा है कि कई बार समझ में नहीं आता कि आगे बढ़ भी रहे हैं या नहीं। सभी साधकों के जीवन का अनुभव यही हैं। साधना आरम्भ करने पर बार-बार मन के भीतर प्रश्न उठेगा, क्या कर रहा हूँ, लक्ष्य की ओर—अपने उपास्य की ओर बढ़ रहा हूँ क्या ? संशय के कारण दीर्घ पथ, एक दो कदम अथवा एक-दो मील बढ़ने पर भी कुछ भी समझ में नहीं आता। मन में संदेह उठता है। जिन लोगों में यह सन्देह अधिक होता है वे शायद 'और नहीं कर सकूँगा' कहकर रुक जाते हैं। बहुतों के जीवन में यह अवस्था होती है कि कुछ दूर जाकर ही कह उठते हैं—अब मेरे द्वारा नहीं होगा, और नहीं कर सकता यहीं थककर बैठ जाता हूँ।

यदि आलस्यवश मैं बैठा रहूँ राह में
यत्नपूर्वक यदि में सोता रहूँ धूल में
पूरी राह बाकी है
यह बात मानो रहे मेरे मन में
मानो भूल न जाऊँ,
वेदना पाऊँ शयन अरु स्वप्न में ।।

साधक-जीवन की यही मुख्य बात है—पूरी राह बाकी है। जितना भी आगे क्यों न बढ़ें लगता है और भी कितनी दूर है वह "आनन्दधाम।" यह जानने के बाद ही साधन पथ पर चलना होगा। और फिर रास्ता कण्टकाकीर्ण-दुर्गम है। पैर क्षतविक्षत होगा, खून निकलेगा, सिर का पसीना पैर तक गिरेगा, प्यास से कण्ठ शुष्क हो जाएगा, ऐसा लगेगा और नहीं सकूँगा; किंतु रुक जाने से नहीं होगा, आगे बढ़ना होगा। इसी का नाम 'साधन' है। अवसाद को प्रश्रय न देकर धैर्य धरकर आगे बढ़ जाना साधन का प्रथम कदम है। धैर्य, असाधारण धैर्य चाहिए। साधन-भजन प्रारम्भ करके बहुत से लोग हम लोगों से कहते हैं कि इतना कर रहे हैं किन्तु क्या हुआ ? मन तो जैसा चंचल था वैसा ही बना हुआ है, दो मिनट चुप-चाप रहकर भगवान की बात सोच नहीं सकता। इस प्रश्न का एक ही उत्तर है और वह है, आगे बढ़ जाने जैसा हम क्या कर रहे हैं ? इतना क्या साधन हम कर रहे हैं कि उनके संबंध में कुछ अनुभव हो जाएगा ? साधन करके जिन्हें पाया नहीं जा सकता, वे साधन दुर्लभ हैं, वे बिना परीक्षा के पकड़ में नहीं आते।

भागवत की एक घटना याद आ रही है। गोपाल की अत्यन्त नटखटता के कारण गोपियाँ अधीर होकर माँ यशोदा के पास केवल यही शिकायत करतीं कि तुम्हारा गोपाल हमारे दही की मटिया फोड़ देता है, माखन खा जाता है, ऊपर छींका में मटकी रखने पर बाँस से खींचकर फोड़ देता है। मात्र यही नहीं सोते हुए छोटे बच्चों को चिकोटी काटकर रुला देता है। इस तरह के अनेक उपद्रव वह करता है। कहना नहीं होगा, जो सब गोपियाँ शिकायत करने आयी हैं वे भी श्रीकृष्ण को प्यार करती हैं, उनकी नटखटता को भी चाहती हैं एवं नटखट कहकर मां यशोदा के पास शिकायत करना भी पसन्द करती हैं। यशोदा अत्यन्त क्रोधित होकर कहती है, इस नटखट लड़के को मैं अब बाँध कर रखूँगी। ग्वाले का घर है, रस्सी का अभाव नहीं। 'बाँध कर रखूँगी' कहकर माँ एक रस्सी लेकर लड़के को बाँधने के समय देखती है रस्सी दो अँगुल छोटी है। इतना सा छोटा लड़का, उसे बाँधने के समय गाय बाँधने की रस्सी दो अंगुल छोटी हो गई, यह जो आश्चर्य की बात है इसकी तरफ माँ का ध्यान नहीं गया।

सोचने लगी, और एक रस्सी जोड़कर बाँधती हूँ। और दूसरी रस्सी भी फिर से दो अँगुल छोटी हो गई। जितनी रस्सी थी सब जोड़ने पर भी दो अँगुल और नहीं बढ़ी। लड़के को बाँधने के उपक्रम में माँ थक गई। भागवत् की वर्णना अत्यन्त सुन्दर है। यशोदा के बदन से पसीना बह रहा है, बाल अस्त-व्यस्त हो गये हैं। श्रान्त-क्लान्त यशोदा अब और नहीं बाँध पा रही है। तब गोपाल ने माँ के पास जाकर स्वेच्छा से अपने को बँधवा लिया। कब बँधवा लिया ? जब माँ नहीं बांध सकी।

भक्तों को भी इसी तरह भगवान को बाँधने के लिए जपध्यान, साधन-भजन की आवश्यकता है। परन्तु इससे भी क्या वे पकड़ में आएंगे ? नहीं पकड़ाने से भी करते जाना होगा। श्रान्तक्लान्त होना होगा। साधन कर-कर के साधन के अहंकार को चूर्ण करना होगा। समझना होगा, कठिन से भी कठिन साधना करने से भी वस्तुलाभ करना सम्भव नहीं। जब हम रोम-रोम से यह समझ पाएँगे एवं समझकर अहंकार एकदम-निश्चिह्न हो जाएगा, तभी वे पकड़ में आएँगे। इसी बात का सुन्दर कवित्वपूर्ण भाव से भागवत में वर्णन किया गया है।

ठाकुर के अन्तरंग त्यागी शिष्य स्वामी तुरीयानन्द बहुत वेदान्त चर्चा करते थे। वे निष्ठावान ब्राह्मण-सन्तान थे। त्रिसन्ध्या जपध्यान, गंगास्नान एवं वेदान्त विचार में उनका पूरा दिन चला जाता। स्वयं के साधन में वे इतने मशगूल थे कि श्रीरामकृष्ण के पास जाने के लिए भी उनके पास समय नहीं होता था। बहुत दिन तक न देख पाने के कारण ठाकुर ने पूछा, "हरि क्यों नहीं आता ?" उनके अन्य शिष्यों ने उत्तर दिया, वे अभी साधना में अत्यन्त व्यस्त हैं इसलिए उनके यहाँ आने के लिए समय नहीं होता। ठाकुर यह सुनकर चुप हो गये। एक दिन ठाकुर बागबाजार में बलराम बसु के घर आये हैं। बलराम बाबू का घर था—कलकत्ता में ठाकुर का "बैठकखाना।" उनके कलकत्ता आने पर भक्त मंडली वहाँ एकत्र होकर उनका दर्शन करती। वहाँ पहुँचकर ठाकुर ने हरि महाराज को खबर देने के लिए कहा। उनका घर पास में ही था। बुलावा पाकर हरि महाराज जब ठाकुर के पास पहुँचे उस समय दुमंजिले के हॉल में भक्तों से घिरे हुए ठाकुर अपने मधुर कंठ से भजन गा रहे थे। अश्रु से उनकी छाती भींग रही थी, मात्र यही नहीं, जिस दरी पर वे बैठे थे उसका भी कुछ अंश अश्रु से भींग गया था। गाना साधारण नाटक का है, परन्तु नाटक के गायक तो श्रीरामकृष्ण के समान मन-प्राण देकर गा नहीं सकते। गाने की विषयवस्तु है—अश्वमेध का घोड़ा लेकर लवकुश एवं श्रीरामचन्द्र में युद्ध। रामचन्द्र के सैनिक लवकुश से घोड़ा छीनने के लिए युद्ध कर रहे हैं। शायद हनुमान नेता थे। सैनिकगण के परास्त होने पर लवकुश हनुमान को बाँधकर माँ के पास लाकर कहते हैं, माँ कितने बड़े एक हनुमान को बाँधकर ले आये हैं! हनुमान ने तब गाना गाकर कहा, "अरे कुशीलव, अहंकार क्या करते हो, पकड़ा नहीं देने से क्या पकड़ सकते थे ?"

ठाकुर इसी गाना को गा रहे हैं और उनकी दोनों आँखों से अश्रुधारा बह रही है। हरि महाराज ने दूर से इस दृश्य को देखा। उनकी आँखों से भी अश्रु प्रवाहित होने लगा। उन्होंने समझा कि यह गाना उनको ही उद्देश्य करके गाया जा रहा है। हरि महाराज को यही शिक्षा देने के लिए ठाकुर ने आज उनको बुला लिया है। और कुछ कहना नहीं पड़ा। उन्होंने समझा, स्वेच्छा से पकड़ा नहीं देने से साधन करके कौन उनको पकड़ सकेगा ? साधन का यह अभिमान वृथा है। यह समझ जाने के कारण अभिमान का

परित्याग कर श्रीगुरु के चरणों में पुनः नये सिरे से उन्होंने आत्मसमर्पण किया।

हरि महाराज बाद में कहते थे, "साधन क्यों, जानते हो? उनको पाने के लिए नहीं, साधन के अहंकार को चूर्ण करने के लिए।" श्रीरामकृष्ण की कहानी में है, उड़-उड़कर पक्षी जब थक जाता तब वह जहाज के मस्तूल पर जाकर बैठ जाता है। उसी तरह भगवान को पाने के लिए साधन करना होगा, परन्तु साधन के द्वारा उन्हें पाया नहीं जा सकता। माँ यशोदा ने जब थक कर सब कुछ छोड़ दिया और बाँध नहीं सकी तभी श्रीकृष्ण पकड़ में आये। हनुमान की असीम शक्ति को पराभूत करके लवकुश हनुमान को पकड़ नहीं पाये। हनुमान जानते थे, वे श्री रामचन्द्र की सन्तान हैं, इसीलिए उनकी पकड़ में आ गये। शायद यह भी जानते थे कि इसी निमित्त माँ जानकी का भी दर्शन लाभ होगा।

इसी तरह साधन के द्वारा उनको प्राप्त करूँगा, लाख जप करके उनको वशीभूत कर सकूँगा—यह हमारी गलत धारणा है! यह हम कभी भी नहीं कर सकेंगे। तब क्या साधन करना वृथा है, निरर्थक है! यह भी नहीं। थक जाने के जैसा साधन कर-कर के यह अभिमान चूर्ण करना होगा कि साधन करके उन्हें प्राप्त नहीं किया जा सकता। तभी हम लोगों के ऊपर उनकी कृपा-वर्षा होगी। मात्र यही याद रखना होगा। उनसे यही प्रार्थना करनी होती है; वे जिससे हमारी अधिक परीक्षा न करें, कठोर परिश्रम न करवाकर कृपा करके हमारे अभिमान को दूर करें एवं स्वयं हमारे समक्ष स्वयं को प्रकट कर दें।

●

अध्यात्म-पथ-प्रदर्शक गुरु

—स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मठ, हैदराबाद

आध्यात्मिक जीवन में प्रशिक्षण की आवश्यकता

महान चीनी दार्शनिक-योगी लाओत्से के एक ...य ने निम्न कहानी कही है: एक युवक ची ...मक लुटेरों के सरदार के दल में सम्मिलित हुआ। एक दिन नवसिखिये ने दल के नेता से पूछा," क्या लाओ (सही तरीका) चोरी में भी पाया जा सकता है?" और ची ने उत्तर दिया "कृपया मुझे ऐसी कोई चीज बताओ जिसमें लाओ, अर्थात् सही पथ अथवा नियम न हो। चोरी में लूट के स्थान का पता लगाने की बुद्धि, सबसे आगे जाने का साहस, अन्त में बाहर निकलने की वीरता, सफलता की संभावना के अंकन की अन्त-दृष्टि तथा डाकुओं में लूट के नीतिसंगत बटवारे में न्याय की आवश्यकता होती है। इन पाँच गुणों के बिना कोई भी सफल चोर नहीं हो सकता।

जीवन के प्रत्येक कार्य में यहाँ तक कि चोरी में भी कुछ सिद्धांत हैं, जो सीखने पड़ते हैं। सभी पेशों में प्रशिक्षार्थी के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। आध्यात्मिक जीवन के लिए यह बात और अधिक

सत्य है। लाओत्से के शिष्य आगे कहते हैं: "विज्ञजनों के सिद्धान्त डाकू तथा सज्जन, दोनों के लिए अपरिहार्य हैं। चूंकि सज्जन कम हैं और दुर्जन अधिक, इसलिए सन्तों द्वारा जगत् का कल्याण कम हो पाता है, जबकि अन्य लोग जगत् का अधिक अकल्याण करते हैं। पाश्चात्य देशों में यात्रा के दौरान संहारात्मक गतिविधियों में व्यय की जा रही शक्ति से मैं आश्चर्य चकित रह जाता था। कितने सैनिकों, विमान चालकों, यान्त्रिकों यहाँ तक कि वैज्ञानिकों को युद्ध के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है? इस समय और शक्ति के एक अंश का भी व्यय आत्मा के प्रशिक्षण के लिए, परमात्मा के ज्ञान, आनन्द और शान्ति की प्राप्ति में हमें समर्थ बनाने में उपयोग क्यों नहीं किया जाता?

उपनिषद् के महान ऋषियों ने हमारे सम्मुख आत्म-साक्षात्कार को जीवन के लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। लेकिन आध्यात्मिक जागरण के बिना यह लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। लेकिन धर्म-जगत् में क्रिया-अनुष्ठान और कर्मकाण्ड अधिक और वास्तविक आध्यात्मिक जागरण बहुत कम दिखाई देता है। इसलिए आत्म-साक्षात्कार रूपी वास्तविक धर्म में लोगों का विश्वास नहीं रहा है और अब धार्मिक ढोंगियों की बहुतायत हो गयी है, जो योगिक-सिद्धियों का दावा करते हैं तथा आसानी से स्वर्ग दिलाने का आश्वासन देते हैं। साथ ही नैतिक शुद्धि के लिए प्रयत्न करने में अनिच्छुक पराश्रयी लोग आसानी से मुक्ति प्राप्त करना चाहते हैं।

चरम लक्ष्य प्राप्त करने वाला, अथवा जो कम-से-कम उसके निकट तक गया है, वही उसकी प्राप्ति का मार्ग बता सकता है। आध्यात्मिक जीवन में सम्यक् मार्गदर्शन के बारे में उपनिषदों में कहा गया है:

"बहुत से लोग आत्म-तत्व के बारे में सुन नहीं पाते। बहुत से लोग सुनकर भी समझ नहीं पाते। आत्म-तत्व का वेत्ता आश्चर्यजनक होता है। इसको जानने वाला आश्चर्यजनक होता है। कुशल आचार्य द्वारा अनुशिष्ट तथा तत्त्वज्ञान प्राप्त करने वाला धन्य है। (कठोपनिषद् १.२.७) "आत्म तत्त्व का ज्ञान किसी अवर (निम्न कोटि के व्यक्ति) द्वारा कहे जाने पर पूरी तरह प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि उसके बारे में विभिन्न धारणाएँ होती हैं। आत्मा अणु से भी अणुतर है, और अतर्क्य है। अनुभूति सम्पन्न आचार्य द्वारा कहे जाने पर व्यक्ति लक्ष्य प्राप्त करता है और पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता। (कठोपनिषद् १.२.४)

मुमुक्षु कर्म द्वारा प्राप्त स्वर्गादि लोकों के सुखों की परीक्षा करे। उसके बाद उनसे विरक्त होकर चिरन्तन आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए विनम्रता पूर्वक श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के निकट जावे। ऐसे प्रशांतचित्त, शमयुक्त विनयावनत शिष्य को विद्वान् आचार्य तत्त्वतः वह ब्रह्मविद्या प्रदान करते हैं, जिससे अक्षर ब्रह्म (पुरुष) को सम्यक् रूप से जाना जा सकता है।

(मुण्डकोपनिषद १.२.१२,१३)

गुरु का कार्य

आत्म साक्षात्कार का क्या अर्थ है? इसका अर्थ जीव और परमात्मा का मिलन है। जीवन के विभिन्न अनुभवों और दुःखों से गुजरते हुए जीव परमात्मा के निकट पहुँचता है, और अन्त में उसके साथ एकत्व का अनुभव करता है। इस प्रक्रिया का उपनिषद् में मनोहर वर्णन किया गया है:

"सुवर्ण पंखों वाले तथा नित्य साथी वाले दो पक्षी एक ही वृक्ष की शाखाओं पर रहते हैं। इनमें से एक वृक्ष के कटु और सुस्वादु फलों को खाता है दूसरा बिना खाये शान्त भाव से देखता रहता है।

आत्मस्वरूप से विस्मृत मोहग्रस्त जीव सांसारिक जीवन में लिप्त हो दुःख भोगता है। लेकिन जब वह उपास्य ईश्वर को अपनी आत्मा के रूप में जानता तथा उसकी महिमा को देखता है, तब वह शोकरहित हो जाता है।

(मुण्डकोपनिषद् ३. १. १, २)

हम अपने दिव्य स्वरूप को भूल गये हैं। इस लिए भगवान् के निकट जाने के बदले हम संसार में अधिकाधिक फंसते जाते हैं। किसी के द्वारा हमें अपने वास्तविक स्वरूप का भान कराया जाना चाहिए। गुरु यह कार्य करते हैं। गुरु को कार्य शिष्य को अनादि अज्ञान निद्रा से जगा कर परमात्मा का पथ प्रदर्शित करना है। गुरु ईसाई पादरी की तरह नहीं है, जो मानव और भगवान के बीच में स्थित रहता है। गुरु शब्द का "व्युत्पत्तिपरक' अथ है अज्ञान नाश करके ज्ञानालोक प्रदान करने वाला आध्यात्मिक पथ प्रदर्शक।

गुकारोऽन्धकारस्तु रूकारस्तन्निवर्तकः।
अन्धकार निवर्त्या तु गुरुरित्यभिधीयते॥

वह हमारी अपने सम्बन्ध में पोषित विपरीत मान्यता को दूर कर मोहनिद्रा भंग करने में सहायक होते हैं।

श्रीरामकृष्ण अपने को भेड़ समझने वाले शेर की कहानी सुनाया करते थे। एक बार एक शेरनी ने भेड़ों के एक झुण्ड पर हमला किया, लेकिन जब गड़ेरिये ने प्रतिरोध किया तो वह एक ओर गिर पड़ी और एक शेर-शावक को जन्म देकर मर गयी। गड़ेरिये को शावक पर दया आयी और वह उसे भेड़ों के साथ पालने-पोसने लगा। शेर-शावक भेड़ का दूध पीने लगा और भेड़ों की तरह मिमियाना और घास खाना सीख गया। कुछ वर्षों बाद एक दूसरे शेर ने इस झुण्ड पर हमला किया और उसे एक शेर को भेड़ों का-सा आचरण करते देख बड़ा आश्चर्य हुआ। वह भेड़-शेर को पकड़कर एक तालाब के निकट घसीट कर ले गया और उसे पानी में अपना प्रतिबिम्ब दिखाया फिर बड़े शेर ने जवान भेड़-शेर के मुँह में माँस का टुकड़ा दिया और उसे कहा कि वह भेड़ नहीं, बल्कि वास्तव में एक शेर है। इसपर भेड़-शेर ने अपना भेड़-बोध त्याग दिया और अपना वास्तविक शेर-बोध पुनः प्राप्त कर लिया।

(श्रीरामकृष्ण वचनामृत, द्वादश संस्करण

स्वामी ब्रह्मानन्द गुरु की तुलना राजा के मंत्री से किया करते थे। एक गरीब आदमी ने मंत्री से सात दरवाजों वाले महल में रहने वाले राजा से भेंट करवाने की विनती की। मंत्री ने उसकी विनती स्वीकार की और उसे एक के बाद दूसरे दरवाजे से होकर ले जाने लगा। प्रत्येक दरवाजे पर एक सुसज्जित अधिकारी को खड़ा देख हर बार गरीब आदमी मंत्री से पूछता कि क्या वह राजा हैं? सातवें दरवाजे को पार कर राजसी वैभव में प्रतिष्ठित राजा के पास पहुँचने के पूर्व तक हर बार मंत्री "नहीं" कहता। राजा को देखकर गरीब व्यक्ति और प्रश्न नहीं करता। महल के दरवाजों और गलियारों से ले जाने के लिए उसे किसी मार्गदर्शक की आवश्यकता थी। ब्रह्मानन्दजी कहते हैं," गुरु भी इसी तरह होता है। राजा के मंत्री की तरह वह शिष्य को आध्यात्मिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से ले जाकर अन्त में परमात्मा के निकट पहुँचा देता है।

(इंटरनल कम्पेनियन् १९७१ पृ० २५०)

मानव व्यक्तित्व एक के भीतर एक भवनों और दालानों से युक्त बड़े महल के समान है। परमात्मा गुरु के रूप में हमारे निकट आते हैं, और हमें यह अनुभूति करने में सहायता करते हैं कि हम स्थूल-शरीर, मन, भावनाएं, विचार और मनोभाव नहीं,

बल्कि नित्य-आत्मा है। अज्ञान प्रदेश में भ्रमण करते समय मार्ग जानने वाले एक पथ-प्रदर्शक का होना अच्छा है। गुरु वह पथ प्रदर्शक है जो हमें गन्तव्य तक ले जाकर हमें वहाँ छोड़ देता है।

गुरु की आवश्यकता

भारत में हम आध्यात्मिक जीवन के लिए गुरु की आवश्यकता को मानकर चलते हैं। मैं जब पहली बार यूरोप गया तो कुछ धार्मिक-समूहों को यह कहते सुनकर आश्चर्य चकित रह गया कि वे बिना किसी विशेष प्रशिक्षण के भगवान के साथ वार्तालाप करते हैं, ईश्वरीय वाणी सुनते तथा आध्यात्मिक निर्देश प्राप्त करते हैं। मैंने कुछ लोगों का ध्यान से अवलोकन किया और जैसी मैंने अपेक्षा की थी पाया, कि वे लोग अपनी ही आवाजें सुनते थे; जो कभी-कभी शुभ होती थीं। भगवान् और भगवद्वाणी अपवित्र व्यक्ति से बहुत दूर होती है। एक सुप्रशिक्षित, शुद्धचित्त व्यक्ति अन्तर्यामी भगवान से वार्तालाप अवश्य कर सकता है, लेकिन जब अपवित्र और अप्रशिक्षित व्यक्ति ऐसा दावा करते हैं, तब वे स्वयं को ही धोखा देते हैं। इसपर भी वे कहते हैं कि उन्हें किसी बाहरी सहायता की आवश्यकता नहीं है। मेरे गुरु स्वामी ब्रह्मानन्दजी कहा करते थे "चोरी करना सीखने के लिए भी गुरु की आवश्यकता होती है। और क्या इस महती ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता नहीं है ?" (Spiritual Talks, Advaita Ashrama 1944, p. 42-43).

इसमें कोई रहस्य नहीं है। लोग रेडियम के बारे में जानने के लिए मेडम क्यूरी के पास जाते हैं, वे अणु का स्वरूप समझने के लिए रदरफोर्ड के पास जाते हैं। जिस प्रकार प्रकृति-विज्ञानों में एक सक्षम गुरु की आवश्यकता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक विज्ञान में आत्म-साक्षात्कार की पद्धति सीखने के लिए गुरु का मार्गदर्शन नितान्त आवश्यक है। इस विषय में हम ऐसे क्षेत्र में यात्रा करते हैं, जिसके बारे में हम कुछ नहीं जानते। जो लोग किसी गुरु की आवश्यकता महसूस नहीं करते, जो स्वयं दूसरों का गुरु बनने के लिए अत्यन्त व्यग्र हैं, उन्हें याद रखना चाहिए कि अन्धे द्वारा अन्धे को मार्ग दिखाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

हिन्दू शास्त्रों में गुरु की आवश्यकता पर बार-बार बल दिया गया है। उदाहरण के लिए भगवद् गीता को लो। वहाँ पहले श्रीकृष्ण अर्जुन को कोई आध्यात्मिक उपदेश दिये बिना युद्ध क्षेत्र में ले जाते हैं। तब अर्जुन उनसे विनती करता है :" कार्पण्य दोष के कारण मेरा मन विभ्रमित हो गया है और मैं धर्म के विषय में निर्णय करने में असमर्थ हूँ। मैं शिष्य के रूप में आपसे निवेदन करता हूँ, मुझ शरणागत को उपदेश दीजिये।" (भगवद्-गीता २ : ७) श्रीकृष्ण को गुरु स्वीकार करने पर दिव्य गुरु श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देना प्रारम्भ करते हैं। शंकराचार्य की पुस्तक 'विवेक-चूड़ामणि" में शिष्य गुरु से प्रार्थना करते हुए कहता है।" स्वामी, मैं संसार-सागर में पतित हूँ, कृपया इस दुःख से मेरा उद्धार कीजिए।"

(विवेक चूड़ामणी १३९)

आध्यात्मिक दीक्षा का प्रभाव

श्रीरामकृष्ण कहते हैं; "अपरिवर्तनशील, अक्षर तत्त्व का साक्षात्कार करने के लिए अन्तरात्मा का जागरण आवश्यक है।" आध्यात्मिक तथ्यों का अध्ययन और उनकी चर्चा पर्याप्त नहीं है। अन्त-ज्योति का प्रत्यक्ष दर्शन होना चाहिए।

अन्तरात्मा का यह प्रथम जागरण कैसे होगा ? ब्रह्मज्ञ गुरु आध्यात्मिक दीक्षा द्वारा शिष्य में यह जागरण करते हैं। सभी धर्मों में स्नान, बपतिस्मा, पवित्र जल अथवा तेल से सिंचन, पवित्र शास्त्रांशों

का पाठ, पूजा-अनुष्ठान आदि दीक्षा-रस्में विद्यमान हैं। इन अनुष्ठानों से दीक्षित व्यक्ति उन धार्मिक-समुदायों के विशेष अधिकार प्राप्त कर लेते हैं, जिनके सदस्य के रूप में दीक्षा-रस्म द्वारा वे सम्मिलित किये जाते हैं। यह औपचारिक दीक्षा, जिस आध्यात्मिक दीक्षा की हम बात कर रहे हैं, उससे बहुत भिन्न है।

जब ईसा मसीह ने कहा था : "जब तक व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता तबतक वह ईश्वर के साम्राज्य का दर्शन नहीं कर सकता।" (बाईबिल, जॉन, ३ : ३) तब उनका तात्पर्य यही था। पुनर्जन्म का अर्थ है, आध्यात्मिक जागरण होना, स्वयं को देह समझना त्याग कर आत्मा समझना। "जिसका जन्म देह से होता है वह देह है, जो परमात्मा से पैदा होता है, वह आत्मा है।" (बाईबिल, सन्तजान् ३ : ६) बाद में ईसा के एक शिष्य, सन्त पीटर ने इस कथन को समझाते हुए कहा :" दूषणीय बीज द्वारा पुनर्जन्म नहीं, बल्कि नित्य और स्थायी भगवान के नाम रूपी अदूषणीय, पवित्र बीज से, पुनर्जन्म होना।" (बाईबिल, सन्त पीटर १ : २३) गुरु भगवन्नाम का संचार करते हैं। भगवान् की शक्ति नाम द्वारा, मंत्र द्वारा आती है, और मन्त्र द्वारा आत्मा का जागरण होता है।

भारत में द्विजत्व की धारणा है। द्विज शब्द का एक अर्थ एक पक्षी भी है। पहले अंडा पैदा होता है, उसके बाद, अण्डे से पक्षि-शावक पैदा होता है जो किसी दिन बड़ा होकर पक्षी बनेगा। सभी अंडे पूरे नहीं पकते। सभी पक्षिशावक बड़े नहीं होते। इसी तरह सभी लोग आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त नहीं करते। लोग आध्यात्मिक विकास के विभिन्न स्तरों पर होते हैं। एक प्रसिद्ध संस्कृत श्लोक है :

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारा द्द्विज उच्यते।
वेदपाठी भवेद्विप्रः ब्रह्म जानासि ब्राह्मणः॥

अर्थात् मनुष्य का शूद्र या अज्ञानी के रूप में जन्म होता है। संस्कार द्वारा वह द्विज होता है। स्वाध्याय और शास्त्रपाठ से वह विप्र या विद्वान, कवि होता है। ब्रह्म को जाननेपर वह ब्राह्मण होता है। आध्यात्मिक दीक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सच्चा ब्राह्मण या ब्रह्मज्ञानी बनाना है। उपनिषद् में कहा गया है :" अथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात् प्रैतिस ब्राह्मणः।" (बृहदारण्यक उपनिषद् ३.८.१०.) अर्थात् जो अक्षर ब्रह्म को जानने के बाद इस संसार ले जाता है, वह ब्राह्मण है। श्रीरामकृष्ण के एक महान शिष्य महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) ने एक बार मुझसे कहा था," जो कोई श्रीरामकृष्ण की शरण में आता है, वह वस्तुतः ब्राह्मण है।"

आध्यात्मिक दीक्षा से जीव का परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित हो जाता है। एक चीनी सन्त ने इस प्रकार प्राकृतिक समरसता (लाओ) के सिद्धांत को प्रदर्शित किया : उसने दो वीणाओं को ठीक एक तरह से साधा। उसने एक को पास वाले कमरे में रख दिया और अपने हाथ की वीणा पर "कुंग" स्वर बजाया। तत्काल दूसरी वीणा पर कुंग स्वर बज उठा। "चिओं सुर बजाने पर दूसरी वीणा का वही तार झंकृत हो उठा क्योंकि दोनों तार एक ही सुर में सधे थे। एक वीणा में सुरों की दूरी बदलने पर दूसरी वीणा के सुर बेसुरे और कर्कश हो गये। ध्वनि तो थी, लेकिन मुख्य स्वर का प्रभाव नहीं था। इसी तरह हम पढ़ सकते हैं, विचार कर सकते हैं, बोल भी सकते हैं। लेकिन जब तक हम अपनी आत्मा का परमात्मा के साथ तादात्म्य स्थापित करना सीख नहीं लेते तब तक सब व्यर्थ है।

दीक्षा का प्रभाव उसी पवित्र व्यक्ति में प्रकट होता है जो भगवान् को तीव्रता से चाहता है। पतंजलि शिष्यों के तीन भेद करते हैं! मृदु, अर्थात्

जो आध्यात्मिक साधना की कठिनाइयों को अधिक सहन नहीं कर सकते; मध्यम अर्थात् जो प्रथम से अधिक प्रयत्न करते हैं; तीव्र अर्थात् जो साक्षात्कार के लिए तीव्रता से प्रयत्न करते हैं, जिन्होंने वाह्य व्यवधानों से मन को हटाने का रहस्य सीख लिया है, जिन्हें अन्तर्यामी परमात्म सत्ता का बोध सदा बना रहता है, तथा जिन्हें भगवान् की तीव्र पिपासा लालसा है। देखिए, पातंजलि योगसूत्र १ : २२)। भगवत् प्राप्ति की लालसा को सदा भगवत् कृपा का लक्षण समझना चाहिए।

मेरे अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारंभ में मुझे पथ अत्यन्त कठिन प्रतीत हुआ था। जब मैंने स्वामी ब्रह्मानन्दजी से पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए तो उनका उत्तर था, "संघर्ष, संघर्ष"। गुरु से निर्देश प्राप्त करना पर्याप्त नहीं है, सतत् संघर्ष करना आवश्यक है। सर्वप्रथम शिष्य को पूर्ण आन्तरिकता से सत्य के साक्षात्कार के लिए आतुर होना चाहिए। जो लोग तैयार हैं, उनमें आध्यात्मिक जागरण तत्काल हो सकता है। जो संघर्षरत हैं, उनमें वह धीरे धीरे होता है।

जब हम, आनन्दित होते हैं, तब हम उस आनंद का दूसरों में संचार कर सकते हैं। इसी तरह एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक गुरु अपने शिष्य में आध्यात्मिक स्पन्दनों का संचार कर सकता है। हमने श्रीरामकृष्ण के महान शिष्यों को कई बार इस शक्ति का प्रयोग करते देखा है। वे आध्यात्मिक शक्ति के महान भंडार थे, लेकिन वे उसका बड़ी सावधानी से उपयोग करते थे। सामान्यतः गुरु अपनी शक्ति का संचार मंत्र के माध्यम से करता है।

मंत्र शक्ति

एक बार एक संन्यासी शिष्य ने महापुरुष महाराज से पूछा ? "दीक्षा होते ही सभी लोगों का आध्यात्मिक-जागरण नहीं होता। फिर भी क्या उन्हें कुछ-न-कुछ लाभ नहीं होता ?" महापुरुषजी ने उत्तर दिया : "भले ही दीक्षा के समय उन्हें कुछ भी अनुभव न हो, फिर भी एक ब्रह्मज्ञ गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र की शक्ति अमोघ है। शिष्य में संचारित आध्यात्मिक शक्ति कालान्तर में उसका रूपान्तरण कर देती है और उसके बाद आध्यात्मिक जागरण होता है।"

यदि कोई महात्मा जो पूर्ण ज्ञानी न हो, दीक्षा दे, तो उसका प्रभाव क्या होगा ? एक सामान्य महात्मा की तुलना विद्यालय की ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थी से की जा सकती है, जो महाविद्यालय में प्रविष्ट न होते हुए भी अपने से कनिष्ठों को प्रारम्भिक निर्देश प्रदान कर सकता है। एक ओर वह स्वयं सत्य की ओर अग्रसर होता जाता है; और साथ ही दूसरों में अध्यात्म-बोध का जागरण करने का प्रयत्न करता है। यदि दीक्षार्थी निष्ठापूर्वक आध्यत्मिक जीवन यापन करे तो आध्यात्मिक-जीवन में पर्याप्त प्रगति संपन्न सामान्य गुरु द्वारा दी गयी दीक्षा से भी समय पर आध्यत्मिक जागरण होता है। स्वयं मंत्र में भी महान शक्ति होती है। श्री चैतन्य हमें इसकी शिक्षा देते हुए कहते हैं : "आपने अपने बहुत से नाम प्रकट किये हैं, तथा उनके स्मरण में कोई समय अथवा नियम निर्धारित नहीं किया है।

(नाम्नाम्कारि बहुधा निज सर्वशक्ति
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
(शिक्षाष्टकम् २)

ओम् तथा अन्य भगवन्नामों के जप के प्रभाव के बारे में पतंजलि कहते हैं कि उससे साधन पथ की विभिन्न बाधाएँ दूर होती हैं तथा प्रत्यग् चेतन का अधिगम होता है। (ततः प्रत्यग्चेतना धिगमोऽप्यन्तरायाभावश्चा। (पा० यो० सू० १. २९)।

ये बाधाएँ क्या हैं? व्याधि, संशय मानसिक चांचल्य आदि वे बाधाएँ हैं। मंत्र का जप व्यक्तित्व में एक नयी समरसता और सामंजस्य पैदा करता है, जिससे स्नायु शीतल होते हैं और मन की शक्तियाँ केन्द्रित होती हैं। और कालान्तर में अन्तरात्मा का जागरण होता है। आध्यात्मिक जीवन का प्रारंभ कर रहा साधक मंत्र की शक्ति को समझ न सके, लेकिन निष्ठा पूर्वक उसका जप करने पर वह क्रमशः उसकी शक्ति का अनुभव कर सकेगा। स्वामी ब्रह्मानन्द जी कहते हैं। "जप, जप जप, कर्म करते समय भी जप करो। अपने समस्त क्रियाकलापों के बीच मंत्र-जप का चक्र चलते रहने दो। यदि ऐसा कर सको तो हृदय की समस्त ज्वाला शान्त हो जायेगी। बहुत से पापी भगवन्नाम की शरण लेकर शुद्ध, मुक्त और सिद्ध हो गये हैं। भगवान् और उनके नाम में अटूट विश्वास रखो, जानो कि वे दोनों भिन्न नहीं हैं।

(इटरनल कम्पेनियन पृ० २९७)

अतीत काल में सन्तों ने प्रदर्शित किया है, तथा वर्तमान काल में भी यह बात बार-बार सिद्ध हुई है कि भगवान की शक्ति भगवान् के नाम के माध्यम से अवश्य व्यक्त होती है। गुरु प्रदत्त मंत्र को बहुमूल्य समझ कर हृदय में संभाल कर रखने तथा निरंतर उस पर ध्यान करने से साधक में इस शक्ति का अधिकाधिक विकास होता है। श्रीरामकृष्ण इसकी तुलना मोती बनने की प्रक्रिया से किया करते थे। प्रचलित मान्यता के अनुसार सीपी स्वाति नक्षत्र के उदय होने तक प्रतीक्षा करता है। यदि उस समय वर्षा होती है तो सीपी अपनी सीप को खोलकर उसका जल ग्रहण कर लेता है। फिर वह समुद्र तल में गोता लगाकर महीनों तब तक वहाँ पड़ा रहता है, जब तक वह जल बिन्दु सुन्दर मोती में परिणत नहीं हो जाता। इसी तरह भक्त का हृदय सत्य के लिये उन्मुक्त होना चाहिये और गुरु से आध्यात्मिक उपदेश प्राप्त करने के बाद उसे एकनिष्ठ उत्साह के साथ उसकी तब तक साधना करनी चाहिये जब तक आध्यात्मिक अनुभूति रूप मोती का निर्माण न हो जायें।

शुद्ध मन ही गुरु है :

स्वामी ब्रह्मानन्द जी कहा करते थे, "तुम्हारे मन से बड़ा और कोई गुरु नहीं है।" मानव गुरु सदा पास में नहीं रहते। भले ही हमें सिद्ध गुरु की कृपा और उपदेश प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, लेकिन वे हमारी आवश्यकता के समय सदा हमारे निकट नहीं रहते। लेकिन एक आन्तरिक गुरु, हमारा विशुद्ध मन, सदा हमारे भीतर रहता है। ब्रह्मानन्दजी कहते हैं :" प्रार्थना और ध्यान द्वारा शुद्ध होने पर मन भीतर से तुम्हारा मार्ग प्रदर्शन करेगा। तुम्हारी दैनन्दिन गतिविधियों में भी यह आन्तरिक गुरु तुम्हारा मार्गदर्शन करेगा और लक्ष्य प्राप्ति तक तुम्हारी सहायता करता रहेगा।"

(इटरनल कम्पेनियन p. २५१)

इसका क्या अर्थ हैं? मन आन्तरिक गुरु की तरह कैसे कार्य करता है? समस्त ज्ञान का स्रोत गुरुओं का परमगुरु, परमात्मा सदा प्रत्येक हृदय में विद्यमान है। नैतिक जीवन, प्रार्थना, ध्यान इत्यादि के द्वारा शुद्ध होने पर मन परमात्मा की अन्त-र्ज्योति के संस्पर्श में आता है। शुद्ध मन ईश्वरी ज्ञान के प्रवाह का एक मार्ग बन जाता है। वह गुरुओं के भी परमगुरु से सीधे ज्ञान प्राप्त करता है। जब मन आन्तरिक सत्य के प्रति उन्मुक्त होना सीख जाता है, तब वह अनेक स्रोतों से उपदेश प्राप्त करने में समर्थ होता है। श्रीमद्भागवतम् में एक परिव्राजक अवधूत का वर्णन है, जिसने अनेक प्राकृतिक वस्तुओं को उपगुरुओं के रूप में स्वीकार

किया था। धरती माता से उसने सहनशीलता (धैर्य) का रहस्य सीखा, वायु से अनासक्ति सीखी क्योंकि वायु सुगन्ध या दुर्गन्ध से अप्रभाहित रहती है), आकाश से उसने सभी बन्धनों से मुक्त रहना सीखा, इत्यादि। (श्रीमद्भागवतम् ११.७.९)

तुममें से बहुत से लोग यह जानते हो कि अपना जीवन एक मठ के रसोईघर में व्यतीत करने वाले सत्रहवीं शताब्दी के फ्रांसोसी संत ब्रदर लारेंस को किस तरह ज्ञान प्राप्त हुआ था। पतझड़ के समय पर्णहीन वृक्षों को देख कर उन्हें यह विचार हो आया कि इन नंगी डालों पर पुनः पत्ते उग आयेंगे, और फूल और फल लगेंगे। इससे उनके सामने समस्त पुष्टि में छिपी ईश्वरीय सत्ता और शक्ति उद्घाटित हो गई। उस समय हुये इस आध्यात्मिक जागरण ने उन्हें सारे जीवन में संबल प्रदान किया। हम सभी में ईश्वरीय शक्ति छिपी हुई है, जो जागरण की प्रतीक्षा कर रही है। हमें अपने भीतर विद्यमान परमात्मा चेतना के केन्द्र को खोजना है, तथा प्रसुप्त शक्ति को जागृत करना है। भगवान बुद्ध ने अपनी मृत्यु के बाद इसी आन्तरिक गुरुका अनुसरण करने का उपदेश अपने शिष्यों को दिया था। उन्होंने उनसे कहा : "आत्मदीपो भव" अर्थात् अपने आप का दीपक बनो।

लेकिन हमें सावधानी बरतनी चाहिए कि कहीं हम अपने आप को ही न छलने लगें। हम सोचने लगें कि हमारा मन अच्छा गुरु बन गया है, हम सभी ओर से उपदेश पा रहे हैं। लेकिन अपनी ही इच्छाओं और विचारों को ईश्वरीय प्रेरणा भगवद् वाणी इत्यादि समझने का खतरा सदा बना रहता है। एक सिद्ध जीवन्त गुरु से निर्देश तथा मार्गदर्शन पाने में ऐसा कोई खतरा नहीं रहता। मानव गुरु नैतिक आचरण और निष्काम कर्म द्वारा चित्त शुद्धि के लिए शिष्य को उपदेश देते हैं। शिष्य के गलती करने पर गुरु इसे देखते हैं और उसे पुनः सही मार्ग पर ले आते हैं। सच्चे मानव गुरु के मार्ग दर्शन का सौभाग्य प्राप्त करने वाले भटकते नहीं। क्रमशः गुरु की कृपा से शिष्य की प्रसुप्त प्रज्ञाशक्ति जागृत होगी और उसके बाद शुद्ध प्रज्ञा गुरु का काम करेगी। इस तरह हमारा मन हमारा गुरु होता है।

अवतार श्रेष्ठतम गुरु

हजारों लोगों को ज्ञान प्रदान करने वाले ईश्वरावतार निश्चय ही सबसे महान गुरु हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि अवतार कपाल मोचन होते हैं अर्थात् जो लोगों की नियति को बदल सकते हैं, उनके कपाल पर लिखे, अर्थात् कर्मों को नष्ट कर सकते हैं। किसी सामान्य गुरु में रूपान्तरण करने की ऐसी क्षमता नहीं होती। ईसा मसीह में उन सरल मछुओं को दिव्य ज्ञान प्रदान करने की क्षमता थी, जो उनके स्पर्श से ज्ञानी बन गये। उनमें पापी कहलाने वाले अपवित्र लोगों को परिवर्तित करने की क्षमता भी थी। जब उन्होंने उनसे कहा," तुम्हारे पापों को क्षमाकर दिया है, तुम्हारे विश्वास के कारण तुम पूर्ण हो गये हो, तुम निश्चिन्त हो जाओ," तो उन्हें तत्काल लगा कि वे बुराइयों से मुक्त हो गये हैं।

लेकिन स्वयं ईसा मसीह ने दीक्षा ग्रहण की थी। वह दृश्य आखिर और क्या था, जब जॉर्डन में बपतिस्मा के समय ऐसा कहा जाता है कि, स्वर्ग के द्वार खुल गये और उन्होंने ईश्वर के प्रकाश को एक कबूतर की तरह अवरोहण करते तथा अपने सिर पर उतरते देखा और एक वाणी सुनी, ,,यह मेरा प्रिय पुत्र है, जिससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ?" आधुनिक काल में अधिकाधिक लोग श्रीरामकृष्ण को ईश्वरावतार मानने लगे हैं। उन्होंने भी एक मानव-गुरु से दीक्षा ली थी। ऐसा कहा जाता है कि काली मंदिर के पुजारी का पद

स्वीकार करने के पूर्व उनकी केनाराम भट्टाचार्य नामक कलकत्ता के एक तांत्रिक गुरु से दीक्षा हुई थी। (श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग) जब गुरु ने श्रीरामकृष्ण के कान में मन्त्रोचारण किया तो श्रीरामकृष्ण जोर से चिल्लाये और समाधिस्थ हो गये। गुरु ने कहा कि उन्होंने बहुत से शिष्यों को दीक्षा दी थी, लेकिन उन्हें श्रीरामकृष्ण जैसा कोई भी नहीं मिला था।

समय आने पर श्रीरामकृष्ण ने अपने महान शिष्य नरेन्द्रनाथ को राम मंत्र में दीक्षित किया, जिससे युवक की आध्यात्मिक भावनाएँ अत्यधिक उद्वेलित हुई थीं। वह घंटों भाव-समाधि में डूबा रहा। बाद में यही शिष्य स्वामी विवेकानन्द के नाम से आध्यात्मिकता का एक शक्तिपुंज हुआ। स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका जाने के एक वर्ष पूर्व, सन् १९९२ में, मद्रास के कॉलेज के एक नास्तिक प्राध्यापक ने स्वामीजी से धर्म के सत्यों के विषय में तर्क-वितर्क किया। स्वामीजी ने उसे स्पर्श मात्र दिया और वह संशयी व्यक्ति तत्काल परिवर्तित हो गया। बाद से इस व्यक्ति ने संसार त्याग दिया और उसकी संत की तरह जीवन यापन करने के बाद मृत्यु हुई।

श्रीरामकृष्ण में दृष्टि या इच्छा मात्र से दूसरों में आध्यात्मिक शक्ति-संचार कर उन्हें चेतना की महान ऊँचाइयों तक पहुँचाने की शक्ति थी। स्वामी शिवानन्द (महापुरुष महाराज) ने स्वयं अपने अनुभव का इस तरह वर्णन किया है: "एक बार मैं ध्यान कर रहा था, कि श्रीरामकृष्ण मेरे निकट आये। ज्योंहि उन्होंने मुझे देखा, मैं रो उठा। वे बिना बोले स्थिर खड़े रहे। एक प्रकार की सुर-सुराहट मेरे शरीर पर होने लगी और मेरा सारा शरीर काँपने लगा। श्रीरामकृष्ण ने इस अवस्था की प्राप्ति पर मुझे बधाई दी।"

अपने अन्य गुरु भाइयों की तरह स्वयं स्वामी शिवानन्द भी बाद में एक महान शक्ति संपन्न आध्यात्मिक गुरु बने, जैसे कि वे उनसे भेंट मेरी के समय भी थे। संघाध्यक्ष बनने पर यह शक्ति उनमें और अधिक अभिव्यक्त हुई। लगभग सन् १९२३ में सिन्ध से एक साधक स्वामी शिवानन्द के पास दीक्षा के लिये आया। उस भक्त ने स्वप्न में मंत्र प्राप्त किया था, लेकिन उसका महत्व न समझ पाने के कारण उसका मन उद्विग्न था। महापुरुष महाराज उसे मन्दिर में ले गये, उसे दीक्षा दी और कुछ समय के लिये ध्यान करने को कहा। फिर वे प्रसन्न मुद्रा में, दिव्यभाव से विभोर हो अपने कमरे में लौट आये, क्योंकि उन्हें पता था कि मन्दिर में कुछ महत्वपूर्ण बात हो रही है। नये शिष्य को एक अद्भुत अनुभूति हुई। मन्त्र प्राप्त करते ही उसमें एक नयी आध्यात्मिक चेतना का उदय हुआ, उसकी आँखों से आँसू झरने लगे और वह गहरे ध्यान में निमग्न हो गया। गुरु के पास लौटने पर उसने बताया कि किस तरह उनकी कृपा से उसका हृदय दिव्य शान्ति से पूर्ण हो गया। उसने कहा कि दीक्षा के समय उसे जो मंत्र दिया गया था वह वही मंत्र था जो उसने स्वप्न में पाया था, लेकिन दीक्षा के समय ही उसे उसका अर्थ समझ में आया। तब महापुरुष जो महाराज ने उससे कहा। "वत्स, आज स्वयं भगवान् ने तुम पर कृपा की है। वे ही दूसरों पर दया कर सकते हैं। हम उनके हाथों के यन्त्र मात्र हैं। भगवान् गुरु के हृदय में प्रकट होकर शिष्य के हृदय में आध्यात्मिक शक्ति का संचार करते हैं। मैंने तुम्हें प्रभु को समर्पित कर दिया है, जिन्होंने तुम्हारे जीवन और तुम्हारे भविष्य की जिम्मेदारी ले ली है।

चिरन्तन गुरु

एक कहावत है कि मानव-गुरु शिष्य के कान में मन्त्र उच्चारण करता है, जबकि जगद्गुरु भक्त के हृदय में बोलता है। साधक में अध्यात्म

चेतना का भगवान् द्वारा जागरण होने पर सच्ची दीक्षा होती है। सच्चा गुरु सर्वव्यापी भगवान्, अन्तर्यामी परमात्मा है, जो "संसार की गति, भर्ता, प्रभु साक्षी, निवास, शरण, सुहृद्, प्रभव और प्रलय, आधार, समस्त ज्ञान का निधान और अव्यय बीज है।

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजम् व्ययम्॥
(भगवद्गीता ९ : १८)

साधारण गुरु और शिष्य परस्पर मिलने पर एक दूसरे में भगवान को देखने का प्रयत्न करते हैं। शिष्य गुरु को गुरुओं के गुरु, परमात्मा का एक विग्रह समझता है, जिसके माध्यम से भगवद् कृपा प्रवाहित होती है। वह इसी रूप में उनकी सेवा तथा उपासना करता है, तथा उनकी आज्ञा का पालन करता है। भारत में हजारों लोगों द्वारा पाठ किये जाने वाले प्रसिद्ध लोकों में यह बात व्याप्त हुई है :

अज्ञानमिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया।
चक्षुरून्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवेनमः॥
अनेक जन्म संप्राप्त कर्म बन्ध विदाहिने।
आत्म ज्ञान प्रदानेन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

अर्थात्,

अज्ञानान्धकार से अन्ध व्यक्ति के नेत्रों को ज्ञानरूपी अंजन की शलाका से उन्मीलित करने वाले श्री गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।

अनेक जन्मों के कर्म बन्धनों को आत्म ज्ञान प्रदान करके भस्म करने वाले श्री गुरु को मैं प्रणाम् करता हूँ"

"यस्यैवं स्फुरणं सदात्मकमसत्
कल्पार्थकं भासते
साक्षात्तत्त्वमसीति वेद वचसा यो बोधयत्याश्रितान्।
भत्साक्षात्करणा दभवेन्न पुनरावृत्तिर्भवाभोनिधौ
तस्मै श्री गुरु मूर्तये नम इदं
श्रीदक्षिणा मूर्तये॥
(श्री शंकाराचार्य कृत दक्षिणा मूर्ति स्तोत्र, ३)

अर्थात् जिसके सत् तथा चैतन्य प्रकाश से असत् कल्प जगत् प्रकाशित होता है, जो "तत्वमसी" आदि वेदवचनों से अपने आश्रित शिष्यों को बोध प्रदान करते हैं, जिसके साक्षात्कार से जीव संसार सागर में पुनः पतित नही होता, उन कल्याणकारी गुरु मूर्ति ग्रहण कारी दक्षिणा मूर्त्ति को मैं प्रणाम करता हूँ।

जीवात्मा परमात्मा द्वारा परिव्याप्त और चारो ओर से आवरित है। लेकिन अज्ञान के कारण जीव इस सत्य का अनुभव नहीं कर पाता। दीक्षा का उद्देश्य इस अज्ञान आवरण को दूर करता है। एक बार आवरण दूर हो जाने पर जीव और परमात्मा के बीच का सम्पर्क नियमित साधना द्वारा बनाये रखा जा सकता है।

आवश्यकता और उसकी पूर्ति का पुराना नियम आध्यात्मिक जीवन में भी कार्य करता है। यदि कोई साधक सत्यालोक के लिये तीव्रता से व्याकुल होवे, तो वह सत्यालोक किसी-न-किसी स्रोत से उसे आवरण प्राप्त होगा। उसमें कुछ होता है, उसका हृदय भगवत् कृपा के लिए उन्मुक्त हो जाता है, ईश्वरीय ज्ञानालोक उस पर मानो फूट पड़ता है। और ज्यों-ज्यों वह परम सत्य के निकट पहुँचता है, वह परमात्म-ज्योति को सभी प्राणियों में प्रकाशित होते देखता है और जब वह गुरुओं के परम गुरु परमात्मा के साथ एक हो जाता है, तब वह भी दूसरों के लिए ईश्वरीय-ज्ञान का स्रोत बन जाता है। वह सभी प्राणियों की इस दृढ़ ज्ञान के साथ सेवा करता है कि वह उस भगवान् की ही सेवा कर रहा है जो चिरन्तन गुरु है तथा जो सदियों से जीवों को शिक्षा दे उद्बुद्ध कर रहा है उन्हें ज्ञानालोक प्रदान कर रहा है और उनका पथ प्रदर्शन कर रहा है।

नये समाज की रचना

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मठ, हैदराबाद

११ सितम्बर, सन् १८९३। शिकागो नगर का कोलम्बस सभा-गृह सात हजार, उत्सुक विद्वान श्रोताओं से खचाखच भरा था। मंच पर बैठे थे विश्व धर्म महासम्मेलन में भाग लेने आये विश्व के सभी धर्मों के विभिन्न देशों से आये विख्यात मूर्धन्य प्रतिनिधि। उनके बीच स्वामी विवेकानन्द भी बैठे थे। सभा का प्रारम्भ हुआ और एक के बाद एक वक्ताओं ने अपने व्याख्यान प्रस्तुत किये। अन्त में स्वामी विवेकानन्द का आह्वान किया गया और देवी सरस्वती को मन-ही-मन प्रणाम कर स्वामीजी ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा; "अमेरिका को बहनों और भाइयों।" सम्बोधन के उन कुछ शब्दों को सुनते ही जो लोग सभागृह के बाहर जा रहे थे, वे लौट आये; हजारों लोग खड़े हो गये और करतल ध्वनि से भवन गूँज उठा। पूरे दो मिनट तक तुमुल ध्वनि होती रही। उसके शान्त होने पर स्वामी विवेकानन्द ने भारत के धर्म सहिष्णुता एवं विश्व-बन्धुत्व के सन्देश को कुछ चुने शब्दों में सभा में उपस्थित श्रोताओं के समक्ष रख। स्वामीजी के प्रारम्भिक सम्बोधन के शब्दों; अमेरिका की बहनों और भाइयों मात्र को सुनकर ऐसी तुमुल हर्षध्वनि, करतल ध्वनि क्यों हुई? कुछ लोगों की मान्यता है कि स्वामीजी ने अन्य परम्परागत सम्बोधनों से हटकर अधिक आत्मीयतापरक शब्दों का प्रयोग किया था, इसलिए ऐसा हुआ, "देवियों और सज्जनों," "मित्रो", इत्यादि के स्थान पर उन्होंने बहनो और भाइयों कहा था। लेकिन केवल उन शब्दों से इतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ सकता। वस्तुतः स्वामीजी एक ब्रह्मज्ञ ऋषि थे, जिन्होंने अपनी आत्मा के ब्रह्म के साथ एकत्व का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया था तथा वे "मदात्मा सर्वभूतानां"; अर्थात् मेरी आत्मा ही समस्त प्राणियों की आत्मा है इसका प्रत्यक्ष अनुभव करते थे। एक अन्य घटना से भी यह प्रमाण मिलता है कि स्वामी विवेकानन्द इस सर्वात्मत्कता में प्रतिष्ठित थे। बेलुड़ मठ की बात है। स्वामी विवेकानन्द के गुरु भाई स्वामी विज्ञानान्द को एक दिन रात को दो बजे स्वामीजी विवेकानन्द के कमरे से कराहने की आवाज सुनाई दी। उन्होंने झाँककर देखा तो स्वामीजी को कष्ट से छटपटाते हुए पाया। पूछने पर स्वामीजी ने कहा कि किसी दूर देश में बहुत से लोग कष्ट पा रहे हैं जिनका कष्ट उन्हें अनुभव हो रहा है। दूसरे दिन समाचार प्राप्त हुआ कि किसी स्थान पर रात्रि के उसी समय भूकम्प से बहुत से लोग हताहत हो गये थे।

अद्वैत ज्ञान की उच्चतम आध्यात्मिक अनुभूतियाँ श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द जैसे अवतारी पुरूषों अथवा कुछ इने गिने साधकों के लिए भले ही सम्भव हो, लेकिन मानवजाति के लिए इस सिद्धांत की क्या उपयोगिता है? असंख्य दुर्बल मानवों के लिए यह एक दार्शनिक विचार या कवि कल्पना से अधिक और है ही क्या? जब वह हमारे दैनान्दिन जीवन की समस्याओं को अधिक सरलता से सुलझाने में समर्थ न हो तब तक उसका जन साधारण के लिए मूल्य ही क्या

है ? क्या यह अद्वैत वेदांत का सिद्धांत एक नये, अधिक स्वस्थ एवं सुखकर समाज के गठन का आधार बन सकता है ?

अद्वैत वेदान्त के एकात्मवाद के सम्बन्ध में प्रश्न स्वाभाविक रूप से मन में उठता है, क्योंकि प्रकृति एवं मानव समाज का अवलोकन करने पर हम सर्वत्र दो परस्पर विरोधी शक्तियों को सतत् कार्यशील देखते हैं। एक शक्ति निरन्तर विविधता पैदा करती है तो दूसरी एकता का निर्माण करती दिखाई देती है। एक अधिकाधिक पृथक इकाइयों का निर्माण करती है, तो दूसरी मानों इन पृथक व्याष्टियों को एक समष्टि में लाने और इन भेदों के बीच अभेद लाने में लगी हैं। दो शक्तियों का संघर्ष सामाजिक स्तर पर भी दिखाई देता है और यही प्रस्तुत विषय से सम्बन्धित है। जिस काल से समाज आरम्भ हुआ, ये दोनों शक्तियाँ कार्य कर रही हैं तथा विभिन्न स्थानों और कालों में उनका कार्य नाना रूपों में प्रकट हुआ है। एक जाति बनाने में, दूसरी तोड़ने में लगी है। एक श्रेणियों एवं विशेष अधिकारों को जन्म देने और दूसरी उनका विनाश करने में लगी है। एक विचारधारा कहती है कि व्यक्ति ही समाज की इकाई है, व्यक्ति के विकास पर ही समाज का विकास निर्भर है, अतः व्यक्ति को पूर्ण स्वाधीनता होनी चाहिए। दूसरा मत कहता है कि समाज के स्वास्थ्य पर ही व्यक्ति का स्वास्थ्य निर्भर है। अतः समाज को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यदि व्यक्ति समाज से पृथक हो जाय तो वह स्वस्थ नहीं रह सकता। एक वर्ग कहता है कि सामाजिक वर्गीकरण में पूर्ण साम्य से समाज की मृत्यु हो जायेगी। जीवन का जो अर्थ हम लगाते हैं उसका निमित्त नानात्व ही है। यदि व्यक्तिगत मौलिकता न रहे तो समाज एक दृश्यहीन मरुभूमि की तरह हो जायेगा। दूसरी ओर एकत्व के भाव के समर्थक भी सभी काल में रहे हैं। उपनिषदों, बुद्धों एवं ईसा मसीहों की वाणी में तथा आधुनिक युग के कुछ सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों में भी हमें इसी समाजगत साम्य का वाणी दिखाई देती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार के सभी स्तरों पर दो शक्तियां निरन्तर कार्य करती हैं। ऐसी स्थिति में एकत्व अथवा अद्वैत वेदांत प्रतिपादित एकात्मकता की आम व्यक्ति मानव समाज में कैसे सम्भव है ?

इस समस्या का उत्तर हमें वेदान्त के नीतिशास्त्र में मिलता है। इसे हम व्यवहारिक जीवन में वेदान्त की संज्ञा भी दे सकते हैं। नीतिशास्त्र का उद्देश्य ही प्रेम के माध्यम से एकत्व स्थापित करना है। यह विभेद वर्ण और भूक्षेप नहीं करता। भेद रहे, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। वेदान्त करता है कि ये दो शक्तियां विरोधी नहीं बल्कि परस्पर परिपूरक हैं। नानात्व में एकत्व एवं एकत्व में नानात्व तो प्रकृति का विधान है, सृष्टि की बनावट है। एकत्व सर्वत्र विद्यमान है, उसी प्रकार नानात्व भी। एकत्व को नये सिरे से बनाना नहीं है। उसे स्वीकार भर करना है। समस्त विश्व भेद-अभेद की क्रीड़ाभूमि है, असीम में ससीम की लीला है।

अतः परिस्थितियों एवं बाह्य जगत के भेद मिटाकर पूर्ण एकरूपता लाना नीतिशास्त्र का उद्देश्य नहीं है। और, यह सम्भव भी नहीं है। मानव-मानव में भिन्नता रहेगी ही। लेकिन हम इन सभी के भीतर विद्यमान समता देख सकते हैं।

समं पश्यन्हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥
विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणेगवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

सर्वत्र ईश्वर को समभाव से अवस्थित देखकर व्यक्ति किसी का हनन नहीं करता। वही श्रेष्ठ है

जो ब्राह्मण, श्वपच, चाण्डाल, गाय तथा हाथी सभी के प्रति समदर्शी है। इस वेदान्त दर्शन का व्यवहारिक, सामाजिक जीवन में परिणाम होगा विशेषाधिकारों का त्याग।

विभिन्न प्रकार के विशेषाधिकार :

विशेषाधिकार मानव-समाज के विष हैं और ये कई प्रकार के होते हैं। सर्वप्रथम है बलवान का निर्बल पर पाशविक अधिकार। दूसरा है धन का विशेषाधिकार। धनी व्यक्ति धनहीन से अधिक सुविधाएँ चाहता है उस पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है। इसके बाद है बुद्धि का विशेषाधिकार। और सबसे अन्तिम और सबसे निकृष्ट है, क्योंकि यह सर्वाधिक अत्याचार पूर्ण है आध्यात्मिकता, धर्म का विशेषाधिकार। और आज के युग में कुछ नये विशेषाधिकारों ने जन्म लिया है— वे है पद राजनीतिक पार्टी पर आधारित विशेषाधिकारी लेकिन मानसिक शारीरिक अथवा आध्यात्मिक विशेषाधिकार स्वीकार करना और साथ ही वेदांत के एकात्मवाद, समत्व को भी स्वीकार करना, ये दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

संसार में सभी ओर विशेषाधिकारों का झगड़ा है तथा जितने सामाजिक या राजनीतिक आंदोलन हुए हैं वे सभी विशेषाधिकारों का नाश कर समानता स्थापित करना चाहते हैं, तब फिर वेदान्त के एकात्मवाद की विशेषता क्या है? इस्लाम-ईसाई धर्म तथा साम्यवाद जैसे अन्य एकता या समता-प्रतिपादक आंदोलनों तथा स्वामी विवेकानन्द प्रतिपादित वेदान्त पर आधारित एकामत्तावाद में पहला अन्तर यह है कि जहाँ दूसरे आंदोलन विविधता का किसी-न-किसी स्तर पर—चाहे वह सामाजिक हो अथवा धार्मिक-नाश करना चाहते हैं, स्वामीजी सभी विभेदों को बनाए रखना चाहते हैं। धार्मिक आन्दोलनों में एकता का आधार एक धर्मपुस्तक या पैगम्बर होता है तथा उसमें अन्य धर्मों आदि का स्थान नहीं होता। बाह्य-विभेद को नष्ट करने का प्रयास ही कटुता, अशान्ति, एवं संघर्ष का कारण होता है। स्वामीजी का कथन है, "विविधता को अनन्त काल तक रहने दो।" यह जीवन का सार है। तुम धनी हो, मैं निर्धन हूँ, तुम सबल हो, मैं दुर्बल; तुम बुद्धिमान हो, मैं अज्ञानी हूँ; तुम बहुत आध्यात्मिक हो, मैं कम, (तुम ईसाई हो, मैं हिन्दू) इससे क्या? पर तुम्हें अधिक बुद्धिबल है, इसलिए तुम्हें अधिक सहूलियतें, विशेषाधिकार कदापि नहीं मिलने चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द की एकात्मता की स्थापना का प्रणाली एवं अन्यान्य समतावादी आन्दोलनों में दूसरा अन्तर यह है कि जहाँ दूसरे आन्दोलन विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग से विशेषाधिकार छीनना चाहते हैं, वहाँ विशेषाधिकार देने का उपदेश देते हैं। विशेषाधिकार प्राप्त करने के लिए लड़ना समस्या का समाधान नहीं है, क्योंकि जिसे भी यह प्राप्त होगा, वही उसे रखना, तथा दूसरे को उससे वंचित करना चाहेगा। स्वयं को प्राप्त सहूलियतों का त्याग करना ही इसका समाधान है। सभी प्रचलित आन्दोलन अधिकारों के लिए है। स्वामी जी कर्त्तव्य का आन्दोलन शुरू करना चाहते थे।

एकात्म मानवता का भविष्य :

प्रश्न हो सकता है कि वेदान्त के सर्वात्मकता के सिद्धान्त पर आधारित मानवता का भविष्य क्या है? क्या यह कभी व्यवहारिक जगत् में सम्भव है?

जो लोग अपने विशेषाधिकारों का त्याग कर गरीब, अमीर, ज्ञानी, अज्ञानी, पापी, पुण्यात्मा, सभी में अपनी आत्मा की अवस्थिति को स्वीकारकर सर्वत्र उसी को देखने का प्रयास करने के लिए तैयार हैं, उनके लिए विश्व एकात्मता का आदर्श, अभी इसी क्षण विद्यमान है। वे हरिजन बस्ती में जाएँ

या धनिकों की किसी अति आधुनिक कॉलोनी में। किसानों व मजदूरों के बीच रहें या उद्योगपतियों और सत्ताधारियों के बीच रहें, वे अपने को अपने भाइयों के बीच पायेंगे। वे भारत में रहे या विदेशों में, हिन्दुओं के साथ हों या ईसाई या मुसलमानों के साथ, उन्हें कोई पराया नहीं लगेगा, सभी उनके अपने ही होंगे। सर्वात्मकता के सिद्धान्त को बौद्धिक रूप से भी स्वीकार करनेवालों के लिए यह पृथ्वी इसी क्षण स्वर्ग तुल्य है।

लेकिन जो लोग भेद में अभेद के, अनेकता में एकता की सत्ता को अस्वीकार कर केवल अपने ही मन विशेष को कट्टरता से पकड़े रहना चाहते हैं, जो दानी, निर्धन, बुद्धिमान, अज्ञानी, चाहे किसी भी वर्ग के क्यों न हो विशेषाधिकारों की माँग कर उनके लिए झगड़ते रहेंगे, उन्हें समय लगेगा। घात प्रतिघात एवं अनेक चोटें खाने के बाद वे इस सत्य को हृदयंगम कर सकेंगे कि अधिकारों को प्राप्त करना समस्या का समाधान नहीं है। देने में ही हम पाते हैं। हमारा कार्य प्रेम करना, सेवा करना, देना है। इसी में हमारा पाना निहित है।

अतः वर्तमान युग में सर्वत्र संघर्ष एवं अशान्ति के लक्षण दिखाई देते हुए भी भय या निराश का कारण कोई नहीं है। बीज से नये अंकुर के पैदा होने के लिए बीज को सड़ना पड़ता है, उसे नष्ट होना होता है। इसी प्रकार नये प्रकार की समाज व्यवस्था, नयी मानव चेतना के उदय के लिए पुरानी मान्यताओं एवं उन पर आधारित समाज व्यवस्था को नष्ट होना होगा। श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द का आविर्भाव नये सिद्धांतों पर आधारित एक नये समाज के निर्माण के लिए हुआ था। उनके द्वारा जिस नये समाज का बीज बोया गया है तथा जो धीरे-धीरे अंकुरित हो रहा है, उसका सिंचन कर एक विशाल वृक्ष के रूप में परिणत करने का महत् कार्य स्वामी विवेकानन्द के विचारों में आस्था रखने वाले व्यक्तियों को करना होगा। यह कार्य करना होगा स्वयं के चरित्र निर्माण द्वारा तथा छोटी-छोटी आदर्श मानव इकाईयों के निर्माण द्वारा, न कि भाषणों, सभाओं अथवा राजनीति द्वारा। स्वामी विवेकानन्द ने कहा है, "एक नवीन भारत निकल पड़े हल पकड़ कर, किसानों की कुटी भेद कर, मछुआ, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से, निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से, निकले झाड़ियों, जंगलों, पर्वतों पहाड़ों से।" निकले भारत ही नहीं नया विश्व, नयी मानवता। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि स्वामीजी ने यह नहीं कहा है कि नया भारत सभाओं संसदों या राजनीतिक दलों से निकले। इनका योगदान भले ही हो, लेकिन नयी मानवता का निर्माण छोटी इकाईयों से ही सम्भव है।

नये समाज निर्माण की कार्य प्रणाली :

स्वामी विवेकानन्द केवल एक सिद्धांत-प्रतिपादक स्वप्न द्रष्टा मात्र नहीं थे। वे अत्यन्त व्यवहार कुशल यथार्थवादी भी थे। उन्होंने एकता-मानवता का सिद्धांत प्रतिपादित ही नहीं किया बल्कि उसे कार्यरूप में परिणत करने की योजना भी बतायी है, एवं स्वयं प्रत्यक्ष करके उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। स्वामी जी की योजना का प्रमुख अंग था सर्व त्यागी संन्यासियों के एक संघ की स्थापना, जो सर्वत्र अपनी ही आत्मा को देखने का, वेदांत के सिद्धांत को व्यवहारिक जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। जिस ब्रह्मतत्व का आखें बन्द करके ध्यान करें उसी को आँखे खोलकर गरीबों, रोगियों, पीड़ितों, पापी, पुण्यात्मा, चाण्डाल और ब्राह्मण सभी में देखें तथा नारायण भाव से इन सभी की सेवा करने का प्रयत्न करें, जो किसानों के खेतों में, कारीगर के कारखाने में, बनिये की

दुकान में जायें और अपनी वाणी एवं व्यवहार द्वारा उनमें प्रसन्न चैतन्य को जगाने का प्रयत्न करें।

यह कार्य भारत में बिखरे हुए सैकड़ों मठों से केवल संन्यासियों द्वारा ही किया जाना है, यह बात नहीं है। यह कार्य इस सिद्धांत में विश्वास रखने वाले छोटे बड़े गृही संन्यासी, सभी द्वारा छोटी-छोटी मानव इकाईयों का निर्माण करके करना होगा।

स्वामी विवेकानन्द भी कहते हैं, "संसार में सदा दाता का स्थान ग्रहण करो। प्रेम दो, सहायता दो, सेवा दो जो कुछ तुम थोड़ा बहुत दे सकने हो दो, लेकिन सौदेबाजी से दूर रहो। कोई शर्त न रखो और कोई शर्त तुम पर थोपी नहीं जायेगी। जिस प्रकार प्रभु अपने प्राचुर्य से देते हैं, उसी प्रकार हम भी अपनी पूर्णता से दें।

यही है एकात्म मानवता का आधार एवं उपाय।

जो अणु में, वही ब्रह्माण्ड में

सचिव, रामकृष्ण मिशन, शिलाँग

[स्वामी योगात्मानन्द द्वारा लिखित मराठी लेख का हिन्दी रूपान्तर। यह लेख जनवरी १९९३ के 'जीवन विकास' के परिक्रमा विशेषांक में प्रकाशित हुआ था। —सं०]

हिमालय की उत्तुंग पर्वत-शृंखलाओं के बीच से गुजरते हुए अल्मोड़ा की ओर जाने वाले, प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर, रमणीय मार्ग पर स्वामी विवेकानन्द अपने विचारों में तल्लीन, चले जा रहे थे। उनका मन उन पर्वत-शृंखलाओं के अति उच्च शिखरों से भी ऊँची उड़ानें भरने में व्यस्त था। परमात्मा की अनंतता का अनायास ही स्मरण दिलाने वाली उस घनी हरीतिमा संपन्न वन संपदा को देखकर उनका मन सृष्टि संबंधी अनेक अनसुलझे रहस्यों को अनावरित करने में मग्न था। चलते-चलते अचानक ही स्वामीजी किसी स्थान पर बैठकर ध्यानस्थ हो जाते। कभी-कभी उनके साथ सफर कर रहे स्वामी अखंडानंद को आगे बढ़ने का इशारा कर, स्वतः उस घनघोर अरण्य के अंतर्भाग में अकेले ही प्रवेश कर जाते, मानो उनके अन्तर्मन में स्थित गहन गंभीर, निस्तब्ध ध्यानज्योति किसी अन्य के सान्निध्य का व्यवधान सहन नहीं कर पायेगी। परन्तु उनके भीतर उमड़ रहे अनेक विकट प्रश्नों में झंझावातों का, उस ध्यानज्योति पर थोड़ा-सा भी असर नहीं हो पा रहा था, बल्कि इसके विपरीत ध्यानज्योति के शांत, स्थिर, शुद्ध प्रकाश के प्रभाव से इन झंझावातों के एक-एक वलयों को विनष्ट-सा, प्रभावहीन-सा कर दिया था।

इस तरह अपनी यात्रा के तीसरे दिन वे अल्मोड़ा के समीप काकड़ी घाट पहुँचे। प्रचंड वेग से बहते हुए निर्झर का उपयोग कर वहाँ किसी ने एक पनचक्की लगायी थी। उस झरने के स्वच्छ जल में स्नान कर स्वामीजी निकट ही स्थित एक विशाल अश्वत्थ वृक्ष के नीचे गंभीर ध्यान में निमग्न हो गये।

सबसे ऊपरी भाग में 'मूल या जड़ों' तथा

नीचे शाखा-प्रशाखाओं से विस्तारित विश्व ब्रह्माण्ड रूपी अश्वत्थ वृक्ष विषयक एक जटिल पहेली उनके समक्ष अनावरित हो क्रमशः सुलझने लगी।

★ ★ ★

शाला में व्याकरण शिक्षक ने विद्यार्थियों से प्रश्न किया "पतलून एकवचनी है या बहुवचनी ?"

थोड़ा-सा विचार कर एक विद्यार्थी ने गंभीरता पूर्वक उत्तर दिया—"ऊपर की ओर एकवचन तथा नीचे को ओर बहु वचन, सर।"

उत्तर को एकदम गलत भी तो नहीं कहा जा सकता ?

किसी भी वस्तुबावत वह 'एक है या अनेक' यह निश्चित करना असंभव ही है। व्याकरण की दृष्टि से किसी शब्द का 'वचन' याने वह एकवचन है या बहुवचन बताया जा सकता है पर प्रत्यक्षतः वह वस्तु एक है या अनेक इसके बारे में ठोस निर्णय नहीं लिया जा सकता। क्योंकि किसी भी वस्तु के 'एकत्व' को अनेक भागों में विभाजित किया जा सकता है; तो किसी भी वस्तु के 'अनेकत्व' को समूह रूप में कल्पित कर 'एक' माना जा सकता है। 'अनेक' याने एकत्व की ही अभिव्यक्ति है तो 'एक' में अनेक का विलयीकरण होता है।

इसी तरह एक अन्य प्रकार से यह 'एकत्व-अनेकत्व' की पहेली हमारे समक्ष उपस्थित हो सकती है। एक ही सांचे से ढली अनेक वस्तुएँ जिस प्रकार अनेक होने के बावजूद 'एक' का बोध करती हैं, उसी प्रकार इस अनंत, वैचित्र्यपूर्ण विश्वब्रह्माण्ड की सी वस्तुएँ, भले ही अनन्त प्रकार की हों, फिर भी वे 'एक' ही रहती है। उनमें कहीं-न-कहीं थोड़ी बहुत समानता अवश्य होती है। एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म इलेक्ट्रॉन जिस योजना द्वारा निर्मित है, उसी योजना अंतर्गत ही यह कल्पनातीत रूप से विस्तारित तारकासमूह रचित है। दोनों का साँचा-ढाँचा एक ही है। और इसीलिए जिसे भी हम सामान्यतः छोटा या लघु समझते हैं, उसमें भी महान विश्व ब्रह्माण्ड छुपा रहता है। किसी 'शान्त' वा अत्यन्त छोटी लगने वाली बात का हमें कहीं अन्त ही नहीं मिलता। स्वामी विवेकानन्द 'खुला रहस्य' शीर्षक के एक व्याख्यान में कहते हैं—

"किसी भी एक सामान्य से दिखने वाले फूल का ही उदाहरण लिया जाये, वैसे देखा जाय तो वह 'सान्त' है। पर उस फूल के बारे में 'मुझे सब कुछ मालूम है' ऐसा शायद ही कोई कह सकेगा। किसी भी व्यक्ति को उस फूल से संबन्धित सम्पूर्ण ज्ञान या आदि से अन्त एक पूर्ण जानकारी हो ही नहीं सकती। अर्थात्, जो फूल प्रारम्भ में हमें 'सान्त' लग रहा था, वह अब 'अनंत' हो गया है। रेत का एक कण लिया जाए, और वह 'सान्त' है यह सोचकर उसका विश्लेषण किया जाए पर अंत में हमें यह पता चल ही जायेगा कि वह 'सान्त' नहीं बल्कि अनंत है। उसके बारे में आदि से अन्त तक एक जानकारी हम पा ही नहीं सकते।

विज्ञान की सभी शाखाएँ अपनी-अपनी पद्धतियों द्वारा वस्तुतः इन्हीं सब बातों को खोजने की कोशिश कर रही है। पदार्थ विज्ञान (Physics) एक जैसे शक्तिस्रोत की खोज कर रहा है जिससे सभी प्रकार की छोटी-बड़ी शक्तियों का उद्भव हुआ है। रसायनशास्त्र एक जैसे मूल द्रव्य को खोज रहा है, जिससे सभी पदार्थों का निर्माण हुआ है। गणित-शास्त्र जैसे कुछ मूल तार्किक तथ्यों को ढूँढ़ने की कोशिश कर रहा है जिसकी सहायता से सभी तर्कशास्त्र तैयार किये जा सकें। जीवशास्त्र जीवत्व के एक जैसे एकांक (unit) का अन्वेषण कर रहा है कि यदि वह मिल जाये तो पूर्ण जीवन का रहस्य स्वयंमेव ही खुल जायेगा।

'जो अणु में है वही ब्रह्माण्ड में है' इसी सिद्धांत पर हम सबकी आंतरिक श्रद्धा अवलंबित है। स्वामी विवेकानन्द भी उस निर्झर के निकट ध्यानस्थ बठकर इसी एक 'साँचे' को ढूँढ़ने में व्यस्त हैं। बाहर फैला हुआ विस्तीर्ण बाह्य विश्व तथा उनके स्वतः के 'अन्तरमन' में विस्तारित उतना ही विस्तीर्ण मनोव्यापार का अंतर्विश्व, ये दोनों ही अपनी पूर्ण विविधता सहित, अपने पूर्ण वैशिष्ट्य सहित एक ही साँचे से किस तरह अभिव्यक्त होते हैं इस रहस्य का प्रकटन उन्हें इस ध्यानस्थ स्थिति में हुआ। एक तरफ तो परमाणु से भी सूक्ष्म, तो दूसरी तरफ आकाश से भी अधिक विशाल; इस दोनों 'अतियों' के बीच अवस्थित यह पूर्ण विश्वब्रह्माण्ड एक ही मूल तत्व पर किस तरह आधारित है इसका अकाट्य, वज्रदृढ़ प्रत्यक्ष अनुभव उन्हें इस स्थिति में प्राप्त हुआ।

× × ×

इस ध्यानावस्था के विषय में स्वामी अखंडानंद को बताते हुये स्वामीजी ने कहा—"देखो गंगाधर, इस वृक्ष के नीचे एक महान शुभ मुहुर्त व्यतीत हुआ है। आज इस ध्यानावस्था में मुझे एक बड़ी समस्या का समाधान मिल गया है। व्यष्टि और समष्टि, विश्व ब्रह्माण्ड तथा अणुब्रह्माण्ड एक ही नियमान्तर्गत चलायमान होते हैं, यह सत्य आज मेरे समक्ष उद्घटित हुआ है।"

स्वामीजी ने इस विषय में जो कुछ भी बताया था उसका संक्षिप्त सारांश स्वामी अखंडानंद ने एक पुस्तिका में लिख कर रखा था। उस सारांश की मूल प्रति आज उपलब्ध नहीं है। पर मूल बंगाली वक्तव्य का अंग्रेजी अनुवाद पूर्वी तथा पश्चिमी शिष्यों द्वारा लिखित स्वामीजी के अंग्रेजी जीवन चरित्र में मिलता है। उस अंग्रेजी अनुवाद का पुनः बंगाली अनुवाद किया गया है।

उस 'लेखांश' का पहिला वाक्य हिन्दी में इस तरह लिखा जा सकता है "प्रारम्भ में केवल 'शब्द' था·····इत्यादि।

अमेरिका के 'सहस्रदीपोद्यान' नामक स्थान पर स्वामीजी ने अपने कुछ विशिष्ट, अति जिज्ञासु तथा उत्साही शिष्यों के समक्ष आध्यात्मिक जीवन सम्बन्धित कुछ शिक्षाप्रद उपदेश व्याख्यान के रूप में दिये थे। दिव्य अंतरस्फूर्ति से ओत-प्रोत उनके वे प्रवचन् 'दैवी वाणी' इस सार्थक शीर्षकांतर्गत मराठी में अनुवादित तथा प्रकाशित हुये हैं। उनमें से पहिले ही प्रवचन का प्रारंभ उपर्लिखित 'शब्द' के वर्णन के साथ हुआ है। स्वामीजी ने बाइबिल के 'सेंटजान की पुस्तक से' में से पहिले ही वाक्य को यहाँ उद्धृत किया है—

"प्रारम्भ में केवल शब्द था। यह शब्द 'ब्रह्म' के साथ विद्यमान था। वह शब्द ही 'ब्रह्म' था।

इन वाक्यों को विस्तृत रूप से विश्लेषित करते हुये वे कहते हैं—

"हिन्दू इस शब्द को (ॐ को) ब्रह्म या माया की व्यक्तावस्था कहते हैं क्योंकि यही शब्द ब्रह्म की शक्ति है। इस निरपेक्ष ब्रह्मसत्ता का जब हम माया के आवरण में से अवलोकन करते हैं उस वक्त हम उसे 'प्रकृति' कहते हैं।

यहाँ यह बात विदित ही है कि यहाँ 'ॐ' या 'शब्द' का अर्थ केवल स्थूल ॐ या ध्वनि नहीं है बल्कि स्थूल और सूक्ष्म स्तर पर अणु ब्रह्माण्ड और विश्व ब्रह्माण्ड, इन दोनों का ही सृजन करने वाला महाकारण है। अत्यन्त ब्रह्म को प्रथमतः व्यक्त करने वाले जो शब्द हैं, उन्हीं शब्दों द्वारा छोटी-बड़ी, स्थूल-सूक्ष्म अंतर-बाह्य सभी वस्तुयें निर्मित हुईं हैं या वेदान्त की भाषा में यो कहा जा सकता है कि उन्हीं शब्दों की सहायता से सभी छोटी-बड़ी, स्थूल-सूक्ष्म, अन्तर-बाह्य वस्तुयें व्यक्त की जाती है। प्रत्येक वस्तु का परिचय उसके नाम द्वारा याने किसी शब्दों के विकार

द्वारा ही प्राप्त होता है; किसी विशिष्ट शब्द की सहायता से ही कोई विशिष्ट वस्तु पहचानी जाती है। अतः उस वस्तु को 'शब्द' का स्थूलीकरण मात्र कहा जा सकता है। इस ब्रह्मांड में उपलब्ध जितनी ध्वनियाँ हैं, वे सभी एक मूल ध्वनि की ही छोटी-बड़ी, तीव्र-मंदन स्पंदन मात्र हैं। एकमेवाद्वितीय, सर्वातीत, निर्गुण, निराकार परब्रह्म इन शब्दों के मायाजाल के आवरण में से अनन्त विचित्रपूर्ण ढंग से शोभायमान नजर आता है। और इसीलिये इन सबमें एकत्व और अनेकत्व का एक आनकलनीय सा लुका-छिपी का खेल चलता-सा दिखाई देता है। परब्रह्म और जड़ माया ये दोनों ही क्रीड़ा करते हुये परिलक्षित होते हैं। अनन्त और सान्त ये दोनों समयावच्छेदन के साथ अपनी उपस्थिति दर्शा जाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के अनुभवों के बारे में स्वामी अखंडानन्द आगे लिखते हैं—

अणु विश्व और ब्रह्माण्ड विश्व इन दोनों का ही प्रकटन एक ही योजानानुसार हुआ है। जिस तरह एक जीवात्मा एक प्राणयुक्त देह से बद्ध रहता है उसी प्रकार विराट आत्मा इस प्राणवंत दृष्ट जगत यानी प्रकृति से आबद्ध है। शिवे ने (काली ने) शिव को अपने आलिंग्न में बद्ध कर लिया है। यह उपमा मात्र कवि कल्पना नहीं है। यह एक (आत्मा) द्वारा दूसरे (प्रकृति) को आवरित करने जैसा है, अर्थात् भाव और उसको अभिव्यक्त करने वाले शब्द के बीच संबंध जैसा ही है। ये दोनों एक ही हैं और उन्हें हम अपनी मानसिक विश्लेषण क्षमता द्वारा उनके अलगाव को दर्शा सकते हैं। शब्द के बिना विचारों का अस्तित्व भी संभव नहीं। अतः प्रारम्भ में केवल शब्द था·····इत्यादि।

विश्वात्मा के इस द्विविध प्रकटन का कोई अंत नहीं है, यह अनंत है, अनादि है। अतः हम इस अनन्त साकार या अनन्त निराकार के सम्मिलित रूप को ही देखते अथवा अनुभव करते हैं।

× × ×

इस यात्रा के बाद स्वामीजी ने जो भारतभ्रमण किया था, उस यात्रा के दौरान स्वामीजी ने भारतीयों की दुर्दशा की, उनके दुःखों की जिस संवेदना का अनुभव किया था वह साधारण नहीं था। जब किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति के दुःखों का अनुभव होता है, उसके प्रति जिस प्रकार दुखजन्य सहानुभूति अनुभव होती है, यह सहानुभूति उस प्रकार की नहीं थी। स्वामीजी द्वारा अनुभूत संवेदना की जाति कुछ अलग ही थी। जब किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के दुःखों का अनुभव होता है, तो वह ऐसा होता है मानो एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति का, एक व्यष्टि ने दूसरे व्यष्टि का, एक बिंदु ने दूसरे बिंदू का मात्र अवलोकन भर किया है। इसमें देखने वाले की स्वतः की सुख-दुःख संबंधी कल्पनायें उसके उस व्यक्ति से संबंध, उसके खुद के पूर्वाग्रह इन सब में से छन कर आती हुई तथा विकृत होती हुई संवेदना होती है। पर स्वामीजी ने जनता का जो दुःख अनुभव किया था वह वैसा था मानो व्यष्टि तथा समष्टि के रहस्य को भेदने वाला, तथा (सर्वातीत पर फिर भी सर्वगत, एकमेवा द्वितीय पर फिर भी अनेकत्व की उपमा से विभूषित) परमात्मा का अनुभूति में जो प्रतिष्ठित हो चुका हो और इसीकारण राग द्वेष—संकुचितता इन सबसे परे रहने वाले उनके निश्छल, निष्कपट, पवित्र मन पर पड़ने वाला प्रतिविम्ब हो। यह एक बिंदु द्वारा दूसरे विन्दु के दुख को अनुभवित करने जैसा नहीं था, बल्कि यह ऐसा था मानों सागर ने आत्मस्वरूप विन्दु के दुःख को अनुभव किया हो।

भारत की आमजनता से निकटतर संबंध आने से पहले ही हिमालय के उदान्त, नीरव पर्वतश्रृंखलाओं के बीच स्वामीजी को व्यष्टि-समाष्टि के एकत्व का जो प्रगाढ़ अनुभव हुआ था वह उनके भविष्यकालीन अद्भुत अवतारकार्य के नींव की आधारशिला तो अवश्य ही बनने वाला था, यह अनुमान लगाया जा सकता हैं।

संस्मरण

सारगाछी आश्रम

श्री नन्दलाल टांरिया
कलकत्ता

माँ अन्नपूर्णा की पूजा के दिन आज से एक सौ वर्ष पूर्व सन् १८९७ में स्वामी विवेकानन्द के आह्वान पर उनके गुरु भाई स्वामी अखण्डानन्द जी के नेतृत्व में सेवा कार्य की शुरूआत की गयी थी। संकल्प तो पहले का ही था। 'शिव भावे जीव सेवा' किन्तु सेवा कार्य की शुरूआत अन्नपूर्णा जी की पूजा के दिन सारगाछी से शुरू हुई। इस वर्ष शतवार्षिकी के अवसर पर सारगाछी आश्रम में चार दिन का समारोह तारीख १५ अप्रैल को माँ अन्नपूर्णा की पूजा से प्रारम्भ हुआ। पूजा पंडाल में वहीं के स्थानीय चित्रकार ने माँ अन्नपूर्णा एवं भगवान शिव को अपनी सवारी नन्दी पर अत्यन्त भव्य भाव से दर्शाया। अन्नपूर्णा जी के हाथ में चावल से पूर्ण कटोरा है और भगवान शिव एक छोटे से पात्र में भीक्षा मांग रहे हैं।

कलकत्ता में दुर्गापूजा के समय एक से एक भव्य प्रतिमा का दर्शन होता है किन्तु पता नहीं मुझे क्यों एक अनजान शिल्पी की बनायी मूर्ति से अधिक प्रेरणा मिली। रामकृष्ण मिशन की प्रायः सभी शाखाओं के लगभग १५० संन्यासी, ब्रह्मचारी चार दिवसीय समारोह में उपस्थित थे। हजारों की संख्या में भक्त भी रहे। उनमें एक वृद्ध महिला स्वामी अखण्डानन्द जी से लगभग ६०/७० वर्ष पूर्व दीक्षित भी लाठी के सहारे आयी। इसी सारगाछी आश्रम की पुनीत भूमि पर स्वामी अखण्डानन्द जी ने अनेक भक्तों को दीक्षा प्रदान की और उन्हीं दीक्षित भक्तों में परम आदरणीय गोलवलकर जी भी रहे। ता. १६ अप्रैल की शाम को माँ अन्नपूर्णा की पूजा के पश्चात् स्वामी अनामयानन्द जी द्वारा भागवत् पाठ हुआ। प्रसाद के बाद 'यात्रा' आदि का सांस्कृतिक कार्यक्रम बहुत देर तक चलता रहा।

मुर्शिदाबाद क्षेत्र में १८९७ में भीषण अकाल पड़ा और स्वामी अखण्डानंदजी ने दो ब्रह्मचारियों सुरेन बाबू एवं अन्य के साथ महुआ ग्राम सारगाछी के पास केन्द्र बनाकर राहत कार्य शुरू किया। शुरुआत स्वामी विवेकानन्द द्वारा उनकी प्रणामी से एकत्रित मात्र १५०/- रु० की राशि से हुई। अखण्डानन्द जी ने कहा कि इतना कम साधन और अति विशाल राहत कार्य संभव कैसे हो पायेगा। स्वामी जी ने अपने गुरु भाई को ओजस्वी वाणी में कहा कि रुपये की चिन्ता मत करो, रुपया स्वर्ग से बरसेगा। तुम नारायण की सेवा में जा रहे हो। यह तुम्हारा "अहो भाग्यमहो भाग्यम्" है। स्वामी अखण्डानन्द जी काम में लग

गये। कलकत्ता मठ से उनको समाचार मिला कि प्रेस को देने हेतु राहत का कार्य के विवरण भेजें। जैसे ही स्वामी अखण्डानन्द लिखने को बैठे उन्हें ठाकुर रामकृष्ण के दर्शन हुए कि तुम्हें लोगों पर भरोसा है क्या? मेरे पर भरोसा नहीं रहा। स्वामी अखण्डानन्द जी अपने संस्मरण में लिखते हैं कि यह वाणी उनके मन में बिजली सी कौंध गयी और समूचा कागज आंसुओं को टप-टप से भींग गया। फिर आंख मूंद कर ठाकुर से प्रार्थना में कहने लगे कि ठाकुर मेरी लाज रखो। सैकड़ों दुर्भिक्ष से भूखे बच्चे खड़े हैं। मैं क्या करूँ? अति आश्चर्य की बात। दूसरे दिन सुबह ही मद्रास मठ के संस्थापक अध्यक्ष, स्वामी रामकृष्णानन्द जी का एक हजार रुपये का ड्राफ्ट मिला कि यह राशि मद्रास के एक भक्त ने राहत कार्य हेतु दी है। पाँच सौ रुपये की राशि अगले सप्ताह और देगा। कैसा चमत्कार! यदि पाठक विस्तृत जानकारी चाहें तो स्वामी अखण्डानन्द जी की पुस्तक 'सर्विस ऑफ गॉड इन मैन' पढ़ें। शुरुआत में १५०/- रु० स्वामी जी ने राहत कार्य हेतु अपनी प्रणामी से दिया। स्वामी जी की इस सात्विक प्रणामी की राशि सेवा कार्य में अनन्त गुणा हो गयी। ऐसा ही अद्भुत चमत्कार मैंने बनारस के रामकृष्ण मिशन के अस्पताल में देखा। श्री माँ दर्शन हेतु बनारस गयी थीं और उस समय मिशन का अस्पताल आर्थिक संकट में था। श्री माँ को एक भक्त ने प्रणामी में दस रुपये का नोट दिया और माँ ने वह नोट अस्पताल के अध्यक्ष स्वामी जी को मरीजों की सेवा हेतु उपहार किया। महाराज ने कहा कि माता जी यह टकसाल है। इसका मैं उपयोग नहीं करूँगा। जब जितनी आवश्यकता होगी, इसके प्रिन्ट निकाल लूँगा। अभी भी वह नोट बनारस के अस्पताल में संजो कर रखा हुआ है। स्वामी अखण्डानन्द जी ने भी १५०/- रु० की राशि में से स्वयं के हेतु बिल्कुल भी उपयोग नहीं किया। अखण्डानन्द जी एवं उनके साथी पारी-पारी से महुआ गाँव के गृही लोगों के घर भीक्षा हेतु जाते थे। सुबह कुछ गृही उनके लिये गुड़ का शर्बत और मुढ़ी भेज देते। एक बार उसी समय ५/७ भूखे बच्चे बाहर खड़े थे। स्वामी अखण्डानन्द जी लिखते हैं कि उनके द्रवित भोले चेहरों को देखकर उन बच्चों में गुड़ का शर्बत एवं मुढ़ी वितरित कर दिया। कुछ दिनों के बाद महाबोधि सोसाइटी ने मुर्शिदाबाद राहत कार्य हेतु राशि एकत्रित की वह स्वामी अखण्डानन्द जी को भेजवा दी। स्वामी अखण्डानंदजी लिखते हैं कि मानसिक कष्ट के समय उन्हें स्वामी विवेकानन्द की बाणी जो स्वामी जी ने अखण्डानन्द जी को दी थी कि गंगाधर "मंत्रम् वा साध्येयम् शरीरम्वा पतयेयम्।" मैं मेरे कर्त्तव्य को पूरा करूँगा या शरीर छोड़ दूँगा, से प्रेरणा मिलती रही। १५ मई, १८९७ को दुर्भिक्ष से पीड़ित मात्र १८ लोगों को १२ औंस चावल प्रति दिन के हिसाब से दिया गया। श्री ठाकुर जी की शक्ति का चमत्कार—स्वामी अखण्डानन्द जी लिखते हैं कि मुर्शिदाबाद के कलक्टर श्री लिभेंज और अन्य सरकारी अधिकारी उनके कार्य से बहुत प्रभावित हुए और कहने लगे कि महाराज आप हमें मार्गदर्शन दीजिए। अकाल में लोगों को सहायता हो इस हेतु स्वामी अखण्डानन्द जी ने महुआ गांव में सड़क निर्माण हेतु लोगों को काम देने को कहा और कलक्टर महोदय ने तुरंत आदेश जारी कर दिया। मजिस्ट्रेट ने वहाँ के व्यापारियों पर दबाव डालकर जबकि बाजार भाव तीन रुपये मन का था दो रुपये प्रति मन की दर पर स्वामी अखण्डानन्द जी को चावल दिलाया। सन् १९२५ में रामकृष्ण मठ एवं मिशन के उपाध्यक्ष होने तक वे निरन्तर सारगाछी में रहे एवं उपाध्यक्ष होने के बाद भी उनका निरन्तर सारगाछी आश्रम आना रहा। अखण्डानन्द जी ने अपने भक्तों को कहा

कि तुम लोग केवल सारगाछी जाकर बैठ जाओ। जप-ध्यान करने की आवश्यकता नहीं है। सब अपने आप हो जायगा। महुआ ग्राम के सान्याल परिवार के मकान में स्वामी अखण्डानन्द जी ने चार महीना रहकर राहत कार्य किया था। वह मकान अभी ज्यों का त्यों है। परिवार के वशंज श्री ठाकुर जी की पूजा नित्य करते हैं। हम सभी लोगों ने उस पुनीत मन्दिर का दर्शन किया।

सत्-प्रसंग

—स्वामी विशुद्धानन्द
अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृशन मिशन, लिमडी, गुजरात
स्थान : श्रीरामकृष्ण मिशन, शिलाँग

१५मी मार्च, १९५७

ठाकुर के जोवन से हम जो सिखते हैं, वह शास्त्रों में से इतनी आसानी से सीख नहीं सकते। स्वयं भगवान ही मनुष्य शरीर धारण कर हम लोगों को सिखाने आये थे। उनके सम्बन्ध में जितना चिंतन करेंगे उतना अपना शरीर, मन शुद्ध होगा। शास्त्र में खांड और रेती का मिश्रण है; इसीलिए साधु के मुख से सार बात जान कर ठीक मार्ग में चलना चाहिए, यह बात ठाकुर बार-बार कहते थे।

संसार में दो दिशाएँ हैं—बाहर का जगत एवं अन्तर्जगत। हम लोग बाहर के संसार को जोर से पकड़ कर रखते हैं, परिणामस्वरूप रेशम के कीड़े को तरह कोश में बंद हो जाते हैं।

संसार में असल वस्तु भगवान हैं। उनकी तरफ हमलोग ध्यान नहीं देते। उनको प्राप्त करने के लिए मन, बुद्धि, इन्द्रियों को अंदर को ओर मोड़ना चाहिए। ठाकुर का जीवन इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। उनके संस्पर्श में जो भी आया था उसी के जीवन में परिवर्तन आ गया था। मन को अंतर्मुख करना यह धर्मप्राप्ति का एक उत्तम उपाय है। ठाकुर यह गीत गाते थे—

आपनाते आपनी थेको मन जेओ नाको कारो घरे।
जा चाबे ताई बोसे पावे, खोजो निज अंतः पुरे।

(मन, स्वयं अपने अन्दर रहो, किसी के घर जाना नहीं, जो चाहते हो वह तुमको बैठे-बैठे मिलेगा, अपने अंतःपुर में तलाश करो)।

अपनी सत्ता यह उनकी ही सत्ता है; हम लोग उनके अन्दर रहते हैं—इस बात की अपने अज्ञान के कारण—माया के कारण उपलब्धि नहीं कर सकते। भगवान ने गीता में कहा है कि—"मार्य सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मार्णगणा इव"।

सूत का धागा न हो तो मणियां गिर पड़ेंगी। वे ही यह सूत के धागे हैं। भगवान सभी के साथ जुड़े हुए हैं, उपनिषद में है उनको हटा देने से अपनी कोई सत्ता ही नहीं रहेगी। दूसरे दृष्टिकोण से देखें तो वे ही अपने लक्ष्य स्थल है। यह दोनों बातें सही है।

संक्षेप में कहें तो हम सभी को आनन्द चाहिए। इसी आनन्द में हमलोग रहते हैं और

इसी आनन्द में वापस चले जायेंगे। भगवान जन्म रहित हैं अमर हैं। इसीलिए उनको जानने से हम भी अमर बन जायेंगे। हम शांति को बाहर खोजते हैं परन्तु शांति तो अन्दर रहती हैं।

आनन्द के लिए हमलोग बाहर भाग दौड़ करते हैं, परन्तु यह वस्तु किसी को मिलती नहीं। इन्द्रियों के विषय—जमीन, स्त्री, धन इसमें किसी को सच्ची सुख शांति नहीं मिलती। केवल शास्त्र पढ़ने से यह बात हम नहीं समझ सकते। इसीलिए महापुरुष आते हैं, हम सबको रास्ता बताने के लिए, वे आकर बता देते हैं, समझा देते हैं, कि वास्तविक आनन्द की खान कहाँ है—शांति लाभ का सच्चा रास्ता क्या है। महाजनो येन गतः स पन्था ।। महापुरुषों के द्वारा बताया हुआ रास्ता ही शांति का रास्ता है। महापुरुषगण आकर बारंबार यह बात कह गए हैं तथा साधनों द्वारा तथा अपने जीवन के द्वारा बता गये हैं कि शांति तथा आनन्द बाहर नहीं है, ये तो अन्दर में है। परन्तु हमलोगों की इन्द्रियाँ विषयों की ओर दौड़ती हैं। हम सभी को जो स्वर्ग राज्य चाहिए वह स्वर्ग राज्य कहाँ है ? अपने अंदर। गीता में कहा है कि, 'ईश्वर सबके हृदय में रहते हैं।'

संसार में रास्ते का अन्त नहीं है। बारम्बार संसार में आने जाने के बाद हम देखते हैं कि बाहरी विषयों के अंदर शांति लाभ सम्भव नही—तभी हम अपने अंदर आने के रास्ते की तलाश करते हैं। इसके बाद उनकी कृपा होने से अंदर ही आनंद एवं शांति की खान हमको देखने को मिलती है। एक पुराना गीत ठाकुर गाते; हनुमान जब रावण का मृत्युबाण लेकर भाग रहे थे तो उनको एक साधारण बन्दर समझ कर मंदोदरी फल को लालच देकर भुलाना चाहती थी। इस भुलावे में नहीं पड़कर महावीर बोले थे कि 'क्या मुझे फल की कमी है ? मैं तो श्रीरामचन्द्र कल्पतरु के मूल के पास बैठा रहता हूँ, श्रीरामचन्द्र कल्पतरु के मूल में बैठ सकें तो ही मोक्षलाभ—यह बात हम सबको हमेशा याद रखनी चाहिए। हम देखते तो हैं कि इस संसार में वास्तविक आनन्द सुख शांति नहीं, ठाकुर कहते थे कि—'संसार आंवला जैसा है, उसमें केवल छाल और गुठली है, खाने से अम्ल शूल होता है।' मनुष्य यह सब अन्त में सीखता है—संसार में बार-बार धक्का खाकर। संसार के अन्दर रह कर किस प्रकार शांति के रास्ते पर चला जा सकता, यह पहले जान लेना चाहिए। ईसा का यह विख्यात उपदेश याद करो—'प्रश्न पूछो, तभी जान सकोगे, खोजो तो मिलेगा। मेहनत करना पड़ेगा, मेहनत न करने से कुछ नहीं मिलेगा।

उनको खोजना पड़ेगा। ऐसा करें तभी उनकी प्राप्ति होगी। याद रखो कि दुःख कष्ट, तकलीफ ही अपने जीवन को घडता है और असली चीज का विकास करता है। संसार में सुख की इच्छा करें तो दुःख लेना ही पड़ेगा, कारण कि विषयों के संयोग से सुख-वियोग से ही दुःख। ठाकुर के किसी भी उपदेश का अनुसरण करके चलने से हम उनकी ओर आगे बढ़ेंगे और शांति प्राप्त करेंगे। महामानवों की बातें ही शास्त्र है वे ही मानव जीवन के पथप्रदर्शक हैं।

स्वामी विवेकानन्द की स्मृतियाँ

—स्वामी सदाशिवानन्द
अनुवादक—श्री राजकुमार गौड़
वाराणसी

एक बार स्वामीजी को फ्रांस में एक प्रसिद्ध नाट्याभिनय में आमंत्रित किया गया था। इसका अन्तिम दृश्य एक सुख्यात चित्रकार की चित्रकारी तथा इस विशेष अवस्था की चित्रकारी पेरिस की तत्कालीन चित्रकारी और नाटकों में तब अग्रगण्य थी। स्वामीजी फ्रेंच जानते थे और अपने सम्मुख अभिनीत नाटक को समझ गये थे। अचानक उन्होंने ध्यान दिया तो पाया कि पर्दे के किसी हिस्से पर कुछ तकनीकी गलती थी जिसका सुधार किया जा सकता था। नाटक समाप्त होने पर उन्होंने प्रबन्धक को बुलाया। प्रबन्धक के साथ ही कलाकार वृन्द भी आये जो अपने इस सम्मानित और सुख्यात अतिथि के मनोभावों को जानने के लिए उत्सुक थे। जब स्वामीजी ने दृश्य में तकनीकी गड़बड़ी की ओर ध्यान दिलाया तो वे सभी विस्मित हो गए क्योंकि उस दृश्य को उत्तम कृति माना जाता था और पैनी दृष्टियों से भी गड़बड़ी का पता नहीं लग सका था। कलाकारवृन्द ने अपनी गलती को स्वीकार किया और चित्र में अभिव्यक्तियों की संगति के बारे में स्वामीजी के सुझाव को हृदयंगम करके बहुत प्रसन्न हुये। कलाकारवृन्द यह सोचकर बहुत प्रसन्न हुये कि स्वामीजी चित्रकारी की तकनीक को उतनी ही अच्छी तरह जानते थे जितना कोई अन्य विषय।

हम लोगों ने एक अन्य घटना के बारे में भी सुना है। इंगलैंड में रहते समय स्वामीजी मिस मूलर और कुछ अन्य लोगों के साथ प्रोफेसर वेन की तर्कशास्त्र की छात्रा रह चुकी थी। प्रोफेसर वेन का लॉजिक ऑफ चान्स नामक ग्रंथ इस विषय में उनके गहरे ज्ञान के समान ही प्रसिद्ध था। उन्होंने तर्कशास्त्र के अध्ययन में ही अपना जीवन बिता दिया था और यूरोप में इस विषय के एक अधिकारी विद्वान माने जाते थे। प्रोफेसर वेन ने स्वामीजी के बारे में सुन रखा था चूंकि तत्वमीमांसा सम्बन्धी समस्याओं में उनकी कोई रुचि नहीं थी, इसलिए वार्तालाप केवल तर्कशास्त्र की ओर मुड़ गया। जब स्वामीजी तर्कशास्त्र पर बोलने लगे तो प्रोफेसर वेन ने सोचा कि स्वामीजी ने भी उनकी ही तरह अपना पूरा समय केवल तर्कशास्त्र के अध्ययन में व्यतीत किया है। प्रोफेसर वेन ने स्वयं ही टिप्पणी की, "भारत का एक तर्कशास्त्री आज पाश्चात्य के एक दूसरे तर्कशास्त्री से मिलने आया है।"

चित्रकारी की कला के सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि 'चित्र' शब्द का मूल 'चित' (हृदय) है। जो 'चित' को हमारे सम्मुख अभिव्यक्त करता है, वह चित्र है। स्वामीजी ज्योंहि चिदाकाश (अनन्त अन्तरिक्ष) के भीतर की तरफ उन्मुख हुए, कला और उसकी अभिव्यक्ति के समस्त सिद्धांत उन्हें दृष्टिगत होने लगे। वे तुरन्त ही कला की सभी जटिलताओं को जान जाते थे तथा वे सभी चित्र उनके मस्तिष्क में स्वयं ही प्रकट हो जाते थे जिन्हें वे पहले कभी देख चुके थे। वे प्रायः कहते, "यदि

मैं कोई वस्तु देखता हूँ तो वे मेरे मन के अवचेतन भाग में प्रविष्ट हो जाते हैं और फिर आवश्यकता अनुसार चेतने मन के धरातल पर प्रकट होते हैं। यदि मैं शंकराचार्य के मष्तिस्क का ध्यान करता हूँ तो मैं शंकराचार्य बन जाता हूँ और यदि मैं बुद्ध का ध्यान करता हूँ तो मैं बुद्ध बन जाता हूँ। यहाँ तक कि वे विचार तथा विषय जिनका मैंने पहले कभी भी चिन्तन नहीं किया है विषय का ध्यान करते ही मेरे सामने प्रकट हो जाते हैं और मैं उन सभी को भूलकर अनुभव की जाने वाली सभी वस्तुओं के बारे में बोलता रहता हूँ। जैसा कि आप सभी जानते हैं कि मुझे कोई ज्ञान नहीं है और मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ।" उन्होंने इंगलैण्ड में भाषण देते समय ऐसा कहा था।

उस दिन हम सभी स्वामीजी की इस विचित्रता के बारे में सोचते रहे और इस दार्शनिक को देखकर आश्चर्यचकित रह गये जो केवल चित्रकारी, कला और रंगों की तकनीक के बारे में बात करते थे।

एक अन्य दिन सायंकाल कालिदास मित्र स्वामीजी का दर्शन करने आये। स्वामीजी ऊनी स्वेटर और मोजे पहने हुए तकिया के सहारे बैठे हुए थे। वे पीड़ा से कष्ट पा रहे थे और कुछ कठिनाई से सांस ले रहे थे। हम लोग उनके अति निकट दरी बिछे हुए फर्श पर बैठे हुए थे। श्री मित्र ने आकर स्वामीजी का चरण स्पर्श किया और स्वामीजी ने कहा, "मेरा स्वास्थ्य इस समय बहुत खराब है और इससे मुझे बड़ा कष्ट है।" श्री मित्र ने बीमारी के बारे में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया, "यह मैं नहीं बता सकता। मैंने पेरिस और अमेरिका के सर्वोत्तम चिकित्सकों से परामर्श लिया किन्तु न तो वे रोग पहचान पाये और न ही कोई इलाज या आराम पहुँचा सके।" तब श्री मित्र ने पूछा, "स्वामीजी, हमने सुना है कि आप जापान जा रहे हैं। क्या यह सत्य है?" स्वामीजी ने उत्तर दिया, "जापान सरकार ने श्री ओकाकुरा को इसी उद्देश्य से भेजा है। जापान एक अच्छा देश है। जापान ने उद्योग को कला का दर्जा दे दिया है और प्रत्येक घर को उद्योग का केन्द्र बना दिया है। मैं अमेरिका जाते समय जापान गया था। वे बांस के छोटे घरों में रहते हैं और प्रत्येक घर में सुन्दर पुष्पोद्यान तथा कुछ फलदार वृक्ष होते हैं। यदि श्रीरामकृष्णदेव की इच्छा से मैं कभी जापान जाता हूँ तो तुम मेरे साथ चलना। जापानियों ने कला और उद्योग की पाश्चात्य संस्कृति को अपना लिया है। औपचारिक रूप से तो वे बौद्ध धर्मानुयायी हैं किन्तु आध्यात्मिक रूप से वे उदासीन हैं। यदि भारतीय विचार और आदर्श जापान में प्रविष्ट हो जायँ, तो जापान और भी अधिक धार्मिक देश बन जायेगा। वेदांत के एक छोटे से इंजेक्शन से वह शानदार उन्नति करेगा।" श्री मित्र ने पूछा, "इससे भारत का क्या हित होगा?" स्वामीजी ने उत्तर दिया, "दोनों देशों के बीच विचारों और संस्कृति के आदान-प्रदान से दोनों की सहायता तथा उन्नति होगी।" स्वामीजी ने जापान की विस्मयकारी प्रगति के बारे में बातचीत की और वार्तालाप के दौरान ही वे भारत की अत्यधिक निर्धनता के बिन्दु पर आ गये। वे अपने स्वास्थ्य और शारीरिक दर्द के बारे में सब कुछ भूल गये। वे भारत की अधोस्थिति और आर्थिक विपन्नता से दुखी और पीड़ित थे। उनका चेहरा दुःख से नीला पड़ गया। कभी-कभी वे रामप्रसाद के भक्तिपरक गीतों को गाने लगते। इस प्रकार वे पूर्णतः भिन्न व्यक्ति हो गये। हम लोगों ने भी उन गीतों में भारत की भावनाओं और संवेदना का दर्शन किया और हम लोगों का हृदय अपने देश के लिए पीड़ित हो उठा।

स्वामीजी ने जापान की तीव्र प्रगति के बारे में बातचीत की। उन्होंने यह भी बताया कि कैसे सभ्यता और संस्कृति के लिए नगण्य रहने वाले जापान ने एक साधारण देश से अपने को ऊपर उठाकर आत्मनिर्भर देश बना लिया। वे फ्रांसीसी क्रांति तथा नेपोलियन के बारे में भी बोले। आत्मनिर्भरता और चरित्र की दृढ़ता के बल पर नेपोलियन ने एक साधारण सैनिक से अपने को उठाकर गौरव के शिखर को छू लिया। इस प्रकरण ने पुनः उनने मुखमण्डल और भावभंगिमा को परिवर्तित कर दिया। वे एक दूसरे ही व्यक्ति बन गये थे, मानो वे फ्रांस में नेपोलियन के युग में पहुँच गये थे।

वे सबलता और तेजस्विता से परिपूर्ण थे। उनका मुखमंडल प्रसंगवश दृढ़ हो गया तथा स्वर तीव्र एवं ओजस्वी हो गया। नेत्र विशाल हो गये और स्टील की झिलमिलाहट के समान चमकने लगे। वे इतने अधिक उत्साहित थे कि वे कभी तकिये पर और कभी दरी पर घुटनों के बल बैठ जाते थे तथा कभी-कभी बैठे-बैठे ही ऊपर उछल पड़ते थे। नेपोलियन के बारे में बोलते हुए वे स्वयं ही नेपोलियन जैसे बन गये थे। ऐसा लगता था मानो वे स्वयं जेना और ऑस्टरलिट्ज के युद्ध में निर्देश देते हुए कह रहे थे, "दुश्मन वहां जा रहा है—वे बहुत दूर उड़ान भर रहे हैं—उन्हें रोको—पूर्वी कमान को आगे करो—एक भी व्यक्ति को युद्धस्थल से जीवित न जाने दो। .." "हम लोगों ने युद्ध जीत लिया है. हमलोग विजयी हो गये हैं।" ऐसा कहते हुए वे खुशी में चिल्ला पड़े। कभी एक हाथ तो कभी दोनों हाथ ऊपर ऊठाकर वे काल्पनिक विजय पर अपनी खुशी प्रकट करने लगे और विजय का फ्रांसीसी युद्धगीत गाने लगे।

स्वामीजी इतने अधिक उत्साहित तथा रूपान्तरित हो गये थे कि हम सभी—चारु बाबू, स्वामीजी शिवानन्द तथा अन्य लोग—आश्चर्य-चकित रह गये। वहाँ उपस्थित नौकरवृन्द, माली तथा अन्य सभी अपनी-अपनी जगह पर चुपचाप बैठे रहे और हम सभी ने मानो आकर्षित और सम्मोहित होकर हाथ या पैर कुछ भी नहीं उठाया। स्वामीजी के साथ ही कमरे की हवा भी गर्म हो गई और हम लोग ऑस्टरलिट्ज या जेना के युद्धस्थल में पहुँच गये थे तथा हम लोगों ने तीक्ष्ण एवं चमकीली आँखों वाले नेपोलियन एवं उसकी सेना के प्रति उसके कठोर आदेशों को देखा। हमलोगों में वीरता और साहस की भूमिका वाले स्वामीजी के नेतृत्व में हम लोग स्वयं ही मार्शल ने, शोल्ट, विक्टर, मरमान्ट, मैकडॉनल्ड इत्यादि हो गए थे। हम लोग इस बात के कायल थे कि हम सभी में नेपोलियन की शक्ति थी जो बहुत भारी अन्तर से संसार को जीत सकता था। स्वामी शिवानन्दजी ने हम लोगों को बताया; "यह स्वामीजी का ईश्वर प्रेरित भाषण है। स्वामी जी द्वारा यूरोप और अमेरिका में दिए गए सभी व्याख्यान इसी तरह ईश्वर प्रेरित अवस्था में दिये गये थे।"

तत्पश्चात् स्वामी जी ने ललित विस्तर नामक बौद्ध ग्रंथ से महात्मा बुद्ध की उस प्रतिज्ञा को सुनाया जिसको उन्होंने बुद्धत्व प्राप्ति के पूर्व प्रस्तर शिला पर बैठकर धारण किया था। उन्होंने उस भावना को हम लोगों में जागृत किया, "इसी आसन पर बैठे-बैठे चाहे शरीर सूख जाय, मांस और हड्डियाँ नष्ट हो जाये, किन्तु अनेक जीवन चक्रों में भी सुदुर्लभ उस ज्ञान को बिना प्राप्त किये मैं इस आसन से नहीं उठूँगा।"

स्वामी जी के हृदय में अपने गुरुभाइयों तथा अपने प्रति समर्पित गृहस्थों के लिए अत्यधिक प्रेम था। यदि कोई बीमार होता या वे कोई बुरी

खबर सुनते तो वे उस व्यक्ति के लिये बहुत चिंतित हो जाते। जब तक वे यह नहीं सुनते कि वह व्यक्ति कुछ ठीक हो रहा था, वे परेशान ही रहते। इस प्रकार की अनेक घटनाएँ पहले ही वर्णित हैं अतः उनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है।

स्वामीजी का स्वास्थ्य पूरी तरह से टूट चुका था और वे स्वामी शिवानन्द जी से कहा करते थे, "यह शरीर छिन्न-भिन्न हो गया है। तुम इससे कब तक काम ले सकते हो? और मान लो कि यह शरीर चला गया तो निवेदिता और शशि (स्वामी रामकृष्णानन्द) मेरी आज्ञा का पालन करेगें। वे मेरी एकमात्र आशा हैं।" इस तरह वे हमलोगों को आशा और आशीर्वाद प्रदान करते थे।

उन दिनों स्वामीजी के प्रेम और आकर्षण की शक्ति इतनी अधिक बढ़ गई थी कि हम लोगों को उनकी देह भावनाओं, प्रेम और सहानुभूति का मूर्त ठोस रूप प्रतीत होने लगी थी तथा उनके अधरों से लगातार प्रेम और आशीर्वचनों की धारा प्रवाहित होती रहती थी।

जिस समय हम लोग स्वामी जी के पास जाया करते थे उस समय हम लोग यह बिल्कुल नहीं समझते थे कि ज्ञान और भक्ति क्या चीज है या ध्यान और कर्म में क्या भेद है? हम सभी युवक और अनुभवहीन थे। किन्तु हम लोग उनके प्रेम को समझ सके थे—उनका यह प्रेम इहलौकिक प्रेम नहीं था। हम सभी उनके अतिशय प्रेम से ही आकर्षित हुये थे। जिसने भी स्वामी जी को कम से कम एक बार भी देखा है, वह यह प्रमाणित कर सकता है कि उसने एक ऐसे व्यक्ति को देखा है जो प्रेम कर सकता था और जो संसार को प्रेम की शिक्षा देने के लिए आया था। स्वामी जी के केवल इसी ईश्वरीय प्रेम के कारण कितने युवक सर्वस्व त्याग करके संन्यासी-संघ में शामिल हो गये! आज तक स्वामी जी का प्रेम उन्हें दूसरों की सेवा के लिए अपने जीवन को बलिदान करने हेतु वाध्य कर रहा है।

"समग्र संसार में मठों की स्थापना करनी होगी। किसी देश में आध्यात्मिक भावों के प्रचार की आवश्यकता है तो किसी देश में कुछ इहलौकिक सुख-स्वच्छन्ता की आवश्यकता है।.....भारतवर्ष के लिए हमारा सबसे प्रथम तथा मुख्य कर्तव्य है निम्न श्रेणी के लोगों में विद्या और धर्म का प्रचार करना। रोटी का प्रश्न हल किये बिना भूखे मनुष्य धार्मिक नही बनाये जा सकते। यह एकदम असम्भव है। अतएव, लोगों को रोटी का प्रश्न हल करने का नया मार्ग बताना सबसे मुख्य और सबसे पहला कर्त्तव्य है।"

—स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर
छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार) दूरभाष : 06152-22639

स्वामी विवेकानन्द प्रतिमा-स्थापन

नम्र निवेदन

प्रिय महोदय / महोदया,

आपको यह सूचित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिमी जगत में भारतीय धर्म और अध्यात्म की विजय पताका लहराने के उपरान्त दिग्विजयी **स्वामी विवेकानन्द** के भारत प्रत्यागमन के शताब्दी-महोत्सव वर्ष की स्मृति में स्वामी विवेकानन्द की आदमकद कांस्य-प्रतिमा की स्थापना करने का शुभ संकल्प छपरा के नागरिकों ने लिया है। छपरा स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अद्भूतानन्द (लाटू महाराज) के जन्म-जिला का मुख्यालय है।

श्री लालू प्रसाद, माननीय मुख्यमंत्री, बिहार ने कृपापूर्वक स्वामीजी की प्रतिमा का शिलान्यास गत १ मार्च, १९९७ को किया है।

मनुष्य-निर्माण, चरित्रगठन, सामाजिक न्याय, सर्वधर्म समभाव एवं भारत के पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा एक विद्युत-तरंग का कार्य करेगी एवं वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा का प्रकाशपुंज सिद्ध होगी— यह निर्विवाद है।

अतएव, आपसे हमारा नम्र निवेदन है कि इस याज्ञिक कार्य में उदारतापूर्वक दान देकर हमारे विनम्र प्रयास का सहभागी बनने की कृपा करें। इस महनीय कार्य में बड़ से बड़ा दान भी अल्प है और छोटे से छोटा दान भी महत्तम है।

स्वामीजी की कृपा आप पर निरन्तर बरसे—यही प्रार्थना है।

प्रेम और शुभकामनाओं सहित—

स्वामी विवेकानन्द चरणाश्रित
आपका
(डॉ० केदारनाथ लाभ)
सचिव

१५ अप्रैल, १९९७

चेक या ड्राफ्ट रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) के नाम से भेजने की कृपा करें। नकद रुपये मनीआर्डर से भेजे जा सकते हैं।

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के शिष्य
स्वामी सारदानन्दजी द्वारा लिखित
भगवान श्रीरामकृष्णदेव की बृहत् जीवनी

श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग

तीन खण्डों में मूल्य रु. १०५/-

भगवान श्रीरामकृष्णदेव का
अपने शिष्यगण, भक्त तथा
दर्शनार्थियों के साथ वार्तालाप

श्रीरामकृष्णवचनामृत

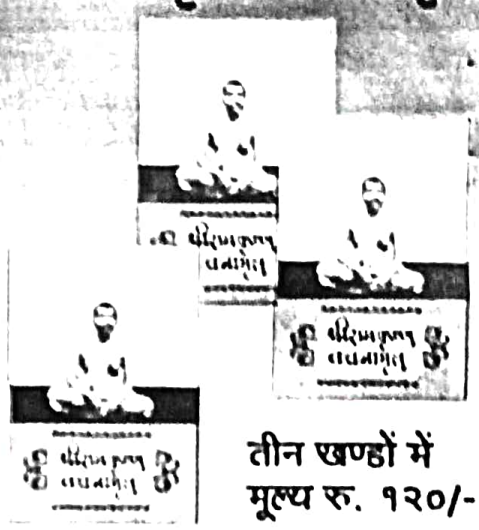

तीन खण्डों में
मूल्य रु. १२०/-

स्वामी गंभीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की
संपूर्ण विस्तृत जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में मूल्य रु. १४०/-

स्वामी विवेकानन्द कृत योगविषयक पुस्तकें

ज्ञानयोग
मूल्य रु.२५.००

राजयोग
मूल्य रु.२०.००

कर्मयोग
मूल्य रु.१३.००

भक्तियोग
मूल्य रु.१२.००

प्रेमयोग
मूल्य रु.१५.००

अधिक जानकारी के लिए लिखें : रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।